ॐ

वर्ष ३

भगवद्भक्तांक

भक्ति

भगवद्भक्तांक

अङ्क १

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक :—कृष्णानन्द ।

आश्विन सम्वत् १९८५ ।

इस अङ्कका मूल्य ॥=)

विषय सूची

नं.	विषय	लेखक	पृष्ठ
१.	मंगलाचरण		१
२.	परपीड़ा हरण की अभिलाषा	[सेठ जमनालाल जी बजाज	३
३.	नूतन वर्ष का उपहार	[सम्पादक	४
४.	मनुष्य का कर्तव्य		५
५.	प्रेम रसज्ञ गोपिकायें		७
६.	गुरु महिमा		७
७.	राम नाम महिमा	[पू० पं० मदन मोहन जी मालवीय	९
८.	आप भला तो जग भला	[श्री भोले बाबाजी अनूपशहर	१०
९.	भक्तों के लक्षण	[श्री महात्मा राम	२२
१०.	हाय दहा	[श्री० पं० गुरुदेव शरण जी मथुरा	२५
११.	श्रीरामकृष्ण जी परमहंस	[श्री० जयदेव जी डालमियां चिड़ावा	२९
१२.	गुरु कृपा से भगवद्दर्शन	[श्री पं० रघुनाथ जी शर्म्मा	३६
१३.	भक्ति का विकाश	[श्रीमती बदामो देवी	३९
१४.	भक्ति मार्ग	[श्री भाई परमानन्द जी	४२
१५.	प्रार्थना (कविता)	[श्री दुर्गा प्रसाद जी गुप्त	४२
१६.	भगवद्भक्तों पर भगवान् का अनुग्रह	[श्री भोले बाबाजी अनूपशहर	४३
१७.	देव के प्रति (गद्य)	[श्री मुरारी शर्मा 'अभय'	५३
१८.	हम चाहते नहीं	[श्री हनुमान प्रसादजी पोद्दार सम्पादक "कल्याण"	५४
१९.	श्रीकृष्ण से दो दो बातें	[वैष्णव श्री देवदास देव	५६
२०.	आह्वान	[श्रीस्वामी आनन्द भिक्षुजी सरस्वती	५७
२१.	वरदेवो हे प्रेममयी (गद्य	[श्रीमती सुमित्रादेवी	६०
२२.	भगवद्भक्त गोभक्त	[श्री गंगाप्रसाद जी अग्निहोत्री	६१
२३.	यमदूत वाणी (गद्य)	[श्री भोलेबाबा जी अनूपशहर	६३
२४.	तुम कहां हो?	[श्री भट्ट रामशंकर मोहनजी	५५
२५.	पागलपन	[श्री छेदीलाल जी गुप्त	६८
२६.	मधुरी तान (कविता)	[श्री दुर्गाप्रसादजी गुप्त	७०
२७.	परमभक्त प्रह्लादजी	भूमानन्द [ब्रह्मचारी	७१
२८.	नाम महात्म्य	[श्री नवलकिशोर ब्रह्मचारी	७७
२९.	गुरु के प्रति (कविता	[श्री मुरारी शर्मा 'अभय'	७१
३०.	भगवद्भक्त रसखान	[श्रीमती क्षमादेवी	८२
३१.	ध्रुव भक्त चरित्र	[श्रीमती सूरज देवी	८४
३२.	प्रेम भीख ही भरदना (गद्य)	[श्रीमती ब्रजकुमारी	९०
३३.	सूरदासजी	[श्रीमती शकुन्तला देवी सूरी	९१
३४.	भक्त हरिदास जी	[हीरानन्द ब्रह्मचारी	९३
३५.	आत्मोद्धार के लिये चेतावनी	[श्री पूज्य जयदयाल जी गोयन्दका	९५
३६.	साधु तुकाराम	[श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी	९७
३७.	भजन		९९
३८.	क्षमा प्रार्थना		१०३

चित्र सूची

१.	मुरली मनोहर रंगीन	टाइटिल पर
२.	श्रीगोपाल कृष्ण (रंगीन)	१
३.	श्रीभगवद्भक्ति आश्रम के मुख्य २ कार्य कर्ता	१३
४.	अजामिल (रंगीन)	२१
५.	स्वा० रामकृष्ण जी परमहंस व स्वा० विवेकानन्द जी	३३
६.	श्री भगवद्भक्ति आश्रम की कन्याशाला की कन्यायें	४५
७.	महात्मा सूरदास	५७
८.	कप्तान राव बहादुर राव बलवीरसिंह जी ओ. बी. ई. प्रेसडेण्ट श्रीभगवद्भक्ति आश्रम	७३
९.	भगवद्भक्त रसखान (रंगीन)	८५
१०.	भक्त हरिदास	९३

भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना. वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा।

४. जो महानुभाव २५) रुपया देंगे वह पत्र के संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखों को प्रकाशित करना और घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और विज्ञापन व प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए।

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९ पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिये।

महारथी का

राजपूत अङ्क

रोम रोम पुलकित कर देने वाले और हृदय में बल भर देने वाले राजपूतों के अछूते चरित्रों से भरा हुआ २०० पृष्ठ का सुन्दर विशेषांक जिस में प्रायः ७५ बहुरंगे और इकरंगे चित्र हैं, स्थायी ग्राहकों को बिना मूल्य ही मिल जायेगा। आज ही ग्राहकों में नाम लिखा लें।

नमूना बिना मूल्य नहीं मिलता है। वार्षिक मू० ५॥) रु०

राजपूत अंक का मू० १) रु० है।

परन्तु रजिस्टरी डाक व्यय सहित १।) रु० होगा।

महारथी-चौथे वर्ष में पदार्पण कर रहा है, इसकी पुरानी प्रतियों के छः छः मास के खण्ड हैं। सजिल्द खण्ड का मूल्य प्रति ४) रु०

पता-महारथी कार्यालय,

चांदनी चौक, दिल्ली।

गो-पाल कृष्ण

Lakshmibilas Press, Calcutta

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली मासिक पत्रिका।

वर्ष ३ | भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, आश्विन पूर्णिमा सं० १९८५। | अङ्क १

मङ्गलाचरण।

यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिल्लोके स्वर्हितम्। तस्मिन्मां धेहि पवमानामृते लोके अक्षित इन्द्रायेन्दो परि स्रव॥ १॥

हे पवित्र स्वरूप! सर्वानन्ददायक! जहां निरन्तर तेज है, उस अमर नाश रहित लोक में मुझ को परमैश्वर्य प्राप्ति के लिये धारण कीजिये आनन्द वर्षाइये॥ १॥

यत्र राजा वैवस्वतो यत्रावरोधनं दिवः। यत्रामूर्यहतीरापस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव॥ २॥

हे आनन्दप्रद देव! जिस तुझ में सूर्य का प्रकाश प्रकाशमान हो रहा है, जिस तुझ में द्युलोक अर्थात् बुरी कामनाओं की रुकावट है, जिस तुझ में वह कारण रूप बड़े व्यापक आकाशस्थ प्राण प्रद वायु है उस अपने स्वरूप में मुझको मोक्ष प्राप्त कीजिये, परमैश्वर्य के लिये मुझको प्राप्त हूजिये॥ २॥

यत्रानुकामं चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिवः। लोका यत्र ज्योतिष्मन्तस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ३ ॥

हे भगवन्! जिस तुझ में इच्छा के अनुकूल विहरण है, जिस तुझ में तीसरे स्वर्ग पर तीनों प्रकाश के ऊपर स्वतः प्रकाश करने वाले, यथार्थ ज्ञान युक्त, ज्योति स्वरूप, ज्ञान स्वरूप, प्रकाश वाले हैं उसमें मुझको मोक्ष प्राप्त कीजिये, परमैश्वर्य के लिये प्राप्त हूजिए ॥ ३ ॥

यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम्। स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ४ ॥

हे दयालु आनन्द युक्त परब्रह्म! जिस तुझ में सम्पूर्ण आनन्द और सब कामना निष्कामना होजाती हैं और जिस तुझ में अपना ही धारण और सम्पूर्ण तृप्ति है, उस रूप में मुझको मोक्ष प्राप्त कीजिए और ऐश्वर्य के लिये अपना स्वरूप प्रकाशित कीजिये ॥ ४ ॥

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते। कामस्य यत्राप्ता कामास्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ५ ॥

(ऋ० मं० ९ सू० ११३)

हे दयालु! हे आनन्द युक्त! जिस तुझ में सम्पूर्ण आनन्द और प्रसन्नता स्थित हैं, जिस तुझ में अभिलाषी पुरुष की सब कामना प्राप्त होती हैं। परमैश्वर्य के लिये मुझ को मृत्यु से रहित कीजिये और प्रेम बर्षाइए ॥ ५ ॥

बलं धेहि तनूषु नो बलमिन्द्रानडुत्सुनः। बलं तोकाय तनयाय जीवसे त्वं हि बलदाअसि ॥ ६ ॥

(ऋ० ३, ५३, १८)

हे परमात्मन्! आपही बल के देने वाले हैं। हमारे शरीर रूपी रथ के घोड़ों में बलवीर्य का संचार करो, हमारे छोटे एवं बड़े सभी जीवन के लिये जीवन बल का दान दो ॥ ६ ॥

परिपूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणं। पुनर्नो नष्ट माजतु ॥ ७ ॥

हे सर्व पोषक! आप अपनी सर्वोपरि शक्ति से हमारे ऐश्वर्य की सदैव रक्षा करें ॥ ७ ॥

समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात्पुनाना यन्त्यनिविशमानाः। इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥ ८ ॥

हे विद्वानो! जो ऐसी हैं कि जिनमें समुद्र ज्येष्ठ है वे पवित्र करती हुई, कहीं निवास न करने वाली जल तरंगें अन्तरिक्ष के बीच से जाती हैं। वह मेरी इस संसार में रक्षा करें और उन प्रमोद कराने वाली जल तरंगों को वर्षा करने वा वज्र के तुल्य छिन्न भिन्न करने वाला बहुत किरणों से युक्त सूर्य वा बिजुली वर्षाता है वैसे तुम हो ओ ॥ ८ ॥

या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा याः स्वयञ्जाः । समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥ ९ ॥

हे मनुष्यो ! जो शुद्ध जल चूते हैं अथवा खोदने से निकलते हैं, या आप उत्पन्न होते हैं, जो समुद्र के लिये हैं, जो पवित्र करने वाले हैं, वह देदीप्यमान जल इस संसार में मेरी रक्षा करें ॥ ९ ॥

यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम् । मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥ १० ॥

हे मनुष्या ! जिन जलों के बीच वरुण राजा मनुष्यों के सत्य और झूठ को यथार्थ जानता हुवा प्राप्त होता है जो मधुर और पवित्र करने वाले हैं वह देदीप्यमान जल मेरी रक्षा करें ॥ १० ॥

यासु राजा वरुणो यासु सोमो विश्वे देवा या ऊर्जं मदन्ति । वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥ ११ ॥

(ऋ० मं० ७ सूक्त ४९)

हे विद्वानो ! जिन में वरुण राजा, सोम और विश्वेदेवा बल को प्राप्त होते हैं, जिन में वैश्वानर और अग्नि प्रविष्ट होते हैं, वह मनोहर जल इस संसार में मेरी रक्षा करें ॥ ११ ॥

परपीड़ा हरण की अभिलाषा

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं न पुनर्भवम् ।
कामये दुःख तप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम् ॥

राज्य स्वर्ग अपवर्ग की नेक नहीं अभिलाष ।
केवल चाहत नाथ मैं आरत जन दुःख नाश ॥

हे भगवन् ! मुझे न स्वर्ग चाहिए, न राज्य चाहिये, और न ही अपवर्ग की अभिलाषा है । मुझे तो केवल दुःख पीड़ित जनों के दुःख के नाश की अभिलाषा है ।

वैश्य कुल भूषण सेठ जमनालाल जी बजाज ।

नूतन वर्ष का उपहार

मनुज देह प्रापत भयो, सब प्रापत को मूल ।
जामे हरि प्रापत नहीं, सब प्रापत में धूल ॥
तुलसी अपने रामको, रीझ भजो चाहे खीज ।
उलटा सीधा जामिये, पड़े खेत में बीज ॥
काऊ के धन माल है, काऊ के परिवार ।
तुलसीदास गरीब के, राम नाम आधार ॥
नाम लिया जिन सब लिया, चार वेदका भेद ।
नाम बिना पच पच मरे, पढ़ पढ़ चारों वेद ॥

इस संसार में प्रत्येक प्राणी सुख की खोज करता है, सर्वदा सुख ही को चाहता है, और सुख के लिये ही सारा प्रयत्न करता है, परन्तु क्या कभी हम भूल कर भी यह सोचते हैं कि वास्तविक सुख किसमें है । हम स्त्री पुत्रादि के लालन पालन में, अपने कुटुम्ब के भरण पोषण में सारी आयु व्यतीत कर देते हैं परन्तु क्या इसमें हमको कभी वास्तविक सुख मिल सकता है ? उस सच्चिदानन्द स्वरूप, सकल जगत् के नियन्ता, सुख के धाम का जब तक हम स्मरण नहीं करेंगे तब तक वास्तविक सुख तो हमसे कोसों दूर पर ही रहेगा। इसी हेतु हमें स्मरण रखना चाहिये कि सांसारिक सुखों को भोगते हुए हम उस सत्य स्वरूप सुख के धाम तक कदापि नहीं पहुंच सकते । यह तब हो सकता है जब हम ईश्वर को ही अपना परम पिता समझें, ईश्वर को ही माता, बन्धु, सकल परिवार तथा अपना सर्वस्व समझें । यदि उस के मार्ग की ओर चलने में हमको हमारा पिता बाधा देता है तो प्रह्लाद की भान्ति उसे तिलांजलि देदेनी चाहिये, यदि भाई बाधक है तो विभीषण की भांति उसे छोड़कर राम शरण में जाना उचित है और यदि स्त्री बाधक होती है तो भर्तृहरि की न्याईं उसे भी दूर हटा दो । हमें तो भगवान् के सामने किसी की कुछ परवाह नहीं करनी चाहिये । जिस कृपालु परमात्माने जननी के जठर में हमारी रक्षा की है वह परमात्मा अब कहीं सो नहीं गया है । वह तो सर्वदा हमारे साथ है, त्रुटि तो हमारी ही है, हमने ही उसे बिसार दिया है । हमें तो चाहिये कि उसका स्मरण जैसे कंगाल अपने दामोंको पल पलमें सम्भाल लेता है ऐसे ही सर्वदा करें । जिस प्राणी ने यह मनुष्य शरीर प्राप्त करके हरि का स्मरण नहीं किया उसने अपना यह अमूल्य मनुष्य देह जिसकी प्राप्ति की इच्छा देवता भी स्वर्ग में बैठे किया करते हैं और जो परम कल्याण का एक मात्र साधन है वृथा ही खोया । सकल सांसारिक बन्धनों को काट कर, सारी ममता को छोड़ कर शंकर में मनको लगाना ही एक मात्र हमारा धर्म है, यही शान्ति और सुख का परम साधन है, यही मनुष्य देह प्राप्ति का अन्तिम लक्ष है और इसी में परम सुख है । हमारे सगे सम्बंधी जिनके

लिये हम सब कुछ करते हैं वह तो अन्त काल में जब कि यमराज काल दण्ड हाथ में लेकर हमारे सामने आवेगा तब हमारी कुछ भी सहायता नहीं कर सकेंगे। वाल्मीकि को जब यह ज्ञान होगया कि यह कुटुम्ब परिवार तो सब अपने २ मतलब के साथी हैं तो उन्होंने सबसे सम्बन्ध तोड़ कर एक मात्र हरि से ही तो नाता जोड़ा था। इससे भी तो हमको कुछ शिक्षा लेनी चाहिये। हमारा अन्तिम लक्ष परम सुख की प्राप्ति होना चाहिये और यह तभी हो सकता है जब हम कामनाओं को परित्याग करके एक मात्र निरंजन रामका भजन करेंगे। जिसने सम्पूर्ण भूत मात्र, सारे जड़ चेतन प्राणी उत्पन्न किये हैं, जिसके सामर्थ्य से सारा जगत् चल रहा है, उस परम पुरुष परमात्मा की पूजा मात्र से ही मनुष्य सिद्धि को प्राप्त कर सकता है। इसलिये हम सबको उस परम पिता परमात्मा की भक्ति करनी चाहिये, दिन रात चौबीस घंटे प्रत्येक कार्य करते हुए उसका स्मरण रखना हमारा मुख्य कर्तव्य होना चाहिये और अपना सारा व्यवहार उसीके हेतु करके अपने सब कर्म उसके अर्पण कर देने चाहियें। प्रातः काल और सायंकाल विशेष रूप से उसकी उपासना करने से चित्त प्रसन्न रहता है हृदय में बल आता है, आत्मिक उन्नति होती है और परमात्मा की सर्वज्ञता और सर्व व्यापकता का अनुभव करके मनुष्य बुरे कर्मों से बचा रहता है। श्रुति कहती है कि "प्रातः और सायं जो धीर पुरुष महान् सर्व-व्यापक परमात्मा की उपासना करता है उसको किसी प्रकार का भी शोच नहीं होता"। इसलिये आबाल वृद्ध, स्त्री पुरुष सबका यह परम धर्म है कि वह जब तक घट में प्राण रहें भगवान् का विस्मरण न करे। भगवद्भक्ति में सन्त, महात्माओं, तथा भगवद्भक्तों के जीवन चरित्र सर्वदा प्राणी के लिये पथ प्रदर्शक की न्याईं होते हैं। इसी लक्ष को ध्यान में रख कर "भक्ति" के नवीन वर्षारम्भ के उपलक्ष में उपहार स्वरूप पाठकों की सेवा में यह भक्ति का "भगवद्भक्तांक" सप्रेम समर्पण है। आशा है भक्ति के पाठक अनेक सन्त महात्माओं, भगवद्भक्तों और विद्वानों के जीवन चरित्रों तथा उपदेशों से लाभ उठा कर कल्याण के भागी बनेंगे।

(सम्पादक)

मनुष्य का कर्तव्य

अनन्त अपार, सर्वशक्तिमान दयालु परमात्मा का ध्यान और खयाल रखना चाहिये। उनके पवित्र नाम (ओं सोऽहं) का उठते बैठते, चलते, फिरते, जप करना चाहिये, पूजा करनी चाहिये। उनके अनन्त उपकारों को स्मरण करते हुए सारे उत्तम कर्म, सारे संकल्प, सम्पूर्ण चेष्टायें और अपने

आपको उनके चरणों में समर्पण करना चाहिये। वही एक हमारा सब कुछ है। जो कुछ मनुष्यकी इच्छा के विरुद्ध होजाता है वह उसीका किया हुवा जान अपने भलेके लिये समझना चाहिये। वह जो कुछ करता है हमारे भले के लिये करता है। जो प्रेम स्त्री, धन, पुत्र, मित्र और सौन्दर्य युक्त पदार्थों के साथ में उत्पन्न होता है वह सब तरह का प्रेम तथा उनसे बढ़ कर परमात्मा से करना चाहिये। वह हमारे नेत्रों का नेत्र है, श्रोत्रों का श्रोत्र है, मन का मन है, प्राण का प्राण है, आत्मा का आत्मा है जो कुछ बाहर दीखता है और उसका ज्ञान होता है और जो कुछ भीतर है वह सब कुछ परमात्मा है, उसके अतिरिक्त कुछ नहीं है। संसार में जो कुछ प्राणी करता है वह अपने लिये करता है और जब अपना आपा परमात्मा को ही जान लिया तो सब कुछ उस एक के लिये है। पूर्वोक्त नाम के जपने से अनन्त भगवान् के दर्शन अवश्यमेव होते हैं। सब संसार को अपना आत्मा अथवा प्रतिबिम्ब समझ कर बर्ताव करना चाहिये। "हरि ओं तत्सत्" कह कर हरेक काम करना चाहिये। जैसे कहा है:-

ओं तत्सदिति मन्त्रेण यो यत्कर्म समाचरेत्।
गृहस्थो वाप्युदासीनः तस्याभीष्टाय तद्भवेत्॥

ओं तत्सत् यह मन्त्र कह कर जो कर्म करता है वह उसकी अभीष्ट की सिद्धि के लिये होता है।

त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पितम्।
गृहाण सम्मुखो भूत्वा प्रसीद परमेश्वर॥

हे गोविन्द! तेरी ही वस्तु है तेरे ही समर्पण है। सन्मुख होकर ग्रहण करो और हे परमेश्वर! प्रसन्न हो वो।

"अनेन विश्वात्मा भगवान् मे प्रीयताम्"

इससे विश्वात्मा भगवान प्रसन्न होवें।

कामतोकामतो वापि यत्करोमि शुभाशुभम्।
तत्सर्वं त्वयि सन्यस्तं त्वत्प्रयुक्तः करोम्यहम्॥

कामना से अथवा अकामना से जो कुछ कर्म करता हूं वह तेरी ही प्रेरणा से और तेरे ही समर्पण करता हूं।

इन मन्त्रों करके सब कर्म भगवत् के लिये समर्पण करे। गीता में भी भगवान् कहते हैं।

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणं हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्म समाधिना॥

अर्पण ब्रह्म है हवि ब्रह्म है और ब्रह्म रूप अग्नि में ब्रह्म रूप होमने वाले के द्वारा होमा हुवा पदार्थ भी ब्रह्म है, इस प्रकार ब्रह्म बुद्धि पूर्वक उस ब्रह्म रूप कर्म में समाधिस्थ होने वाले को गन्तव्य भी ब्रह्म ही है। अथर्व वेद में भी लिखा है-

इत्यादि मन्त्र बोल करके भोजन पावै।

सोते समय रात को यह मन्त्र जपे-

हे नाथ करुणा सिन्धो दीनबन्धो दयां कुरु।
त्वं महेश महाज्ञाता दुस्स्वप्नं मां न दर्शय॥

हे नाथ! करुणा के समुद्र! दीनों के बन्धु दया करो। हे महेश! महाज्ञाता! मुझे खोटे स्वप्न मत दिखाओ। मुझे शांति की निद्रा या तुम्हारे दर्शन का स्वप्न आवे। प्रातः काल उठ कर यह मन्त्र जपै-

लोकेश चैतन्य मयाधिदेव,
श्रीकान्त विष्णो भवदाज्ञयैव।
हिताय लोकस्य तव प्रियार्थं,
संसारयात्रा मनुवर्तयिष्ये॥

हे लोकेश ! हे चैतन्य ! हे मयाधिदैव ! हे मंगल स्वरूप ! हे विष्णो ! आपकी आज्ञा से लोक के हित के लिये तथा आपकी प्रसन्नतार्थ संसार रूपी यात्रा में वर्तू । सूर्य के दर्शन करते ही यह मन्त्र जपै -

नमः सवित्रे जगदेक चक्षुषे,
जगत् प्रसूति स्थिति नाश हेतवे।
त्रयीमयाय त्रिगुणात्म धारिणे,
विरंची नारायण शंकरात्मने ॥

हे सम्पूर्ण जगत् के चक्षु भूत सविता देव ! आपके लिये नमस्कार हो । त्रिविधा रूप सब गुणों के धारण करने वाले, ब्रह्मा, नारायण, शंकर रूप आपको नमस्कार हो ।

प्रेम रसज्ञ गोपिकायें

क समय कंस वध के उपरान्त भगवान ने मथुरा से उद्धवजी को प्रेम विरह से संतप्त गोपियों को शांत करने के लिये व्रजमें भेजा । उद्धवजी गोपियों के पास पहुंचे और उनकी दशा देख कर अत्यन्त व्याकुल हुये । वह भगवान श्रीकृष्णचन्द्र जी के कुशल समाचार सुना कर उन्हें ज्ञानोपदेश करने लगे । परम प्रेमी गोपियों ने जो सिवाय एक अपने प्रियतम कृष्ण के और कुछ भी नहीं जानती थीं, उद्धवजी को उनका सखा समझ कर आदर सत्कार पूर्वक बैठाया और उनसे अपने प्यारे के समाचार सुन कर अत्यंत प्रसन्न हुईं और विरह वेदना के मारे बड़ी व्याकुल हुईं । उनके तो रग रग में रोम रोम में कृष्ण ही समा रहे थे । उन्हें सिवाय कृष्ण के गुणों के दूसरे शब्द भी अच्छे नहीं लगते थे । वे कहने लगीं ।

श्याम तन श्याम मन श्याम ही हमारो धन,
आठों याम ऊधो यहां तो श्याम ही सों काम है
श्याम हिये श्याम जिये श्याम बिन नाहिं तीये,
आँधरे की लकड़ी अधार नाम श्याम है ॥
श्याम गति श्याम रति श्याम ही प्रताप पति,
श्याम सुखदाई से भुलाये घर धाम है ।
तुम भये बौरे ऊधो पति लाये दौरे दौरे,
योग कहां राखें हम रोम रोम श्याम है ॥

गोपियों की उक्ति सुन कर उद्धवजी का हृदय भर आया और अपने ज्ञान के अभिमान को धिक्कारने लगे और अश्रु पूर्ण नेत्रों से कहने लगे -

एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो,
गोविंद एव निखिलात्मनि रूढभावाः ।

वांछंति यद्भवभियो मुनयो वयं च,
किं ब्रह्म जन्मभिरनंत कथा रसस्य ॥

(भा० स० १० अ० ४७ श्लो० ५८)

पृथ्वी में केवल इन गोपियों का ही जन्म सफल है, क्योंकि संसार से डरे हुये मुनि लोग और हम, सबके आत्मा भगवान् में जैसा भाव रखने की इच्छा रखते हैं वैसा भाव इन गोपियों को दृढ़ प्राप्त हो गया है। भगवान् की कथा में यदि अनुराग हो जाय तो पीछे ब्राह्मण जन्म और कर्मों का भी क्या काम है ? इस तरह गोपियों की सराहना करते हुये भाव मग्न हो फिर बोले -

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्याम्,
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा,
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥

(भा० स० १० अ ४७ श्लो० ६१)

अहो ! इनके चरणरज को सेवन करने वाले गुच्छक, लता, औषधी, इनमें से व्रज में मैं कोई भी हो जाऊं तो ठीक क्योंकि इन्होंने अपने दुस्त्यज स्वजन और धर्मको तजकर भगवान् की उस पदवी की शरण ली है जिस पदवी को श्रुतियां भी ढूंढा करती हैं।

इस प्रकार भावना करते हुये उद्धवजी उनके निष्काम प्रेम की सराहना करते हुये उनके चरणरज की वन्दना करने लगे। धन्य है उन परम प्रेमी गोपिकाओं को जिन्होंने इस प्रकार घरबार सब छोड़ केवल भगवान् के चरणों में मन लगाया।

गुरु-महिमा ।

गुरु सम जग में कौन है ? दाता दीन दयाल।
परम पतित से प्रेमकर, पल में करें निहाल ॥
पल में करें निहाल, ज्योति उर प्रेम जगावें ।
कर लें आप समान, भेद का भूत भगावें ॥
अभय-प्रेम साधन सरल, गुरु भक्ति ही अनुपम।
सप्त लोक के मध्य, नहीं को दाता गुरु सम ॥

राम नाम महिमा।

[पूज्य पं० मदनमोहन जी मालवीय का उपदेश]

शरीरमें राम (प्राण) के रहते ही उसको सब कोई प्रेम करते हैं। उसके निकल जानेसे शरीर को जला देते हैं। मुझे तो फूल, पेड़, पत्तों आदि घट घटमें ईश्वर ही ईश्वर दिखलाई पड़ता है। एक ही पानीसे सिंचे हुए और एकही जमीनमें उत्पन्न हुए पुष्प एकही रंगरूपके नहीं होते यही रामकी माया है। फलके प्रत्येक पल्लवसे मुझे भगवान का स्मरण आता है, प्रत्येक भाई और बहिन की आंखोंमें मुझे ईश्वर दिखलाई पड़ता है। सनातनधर्म की यही महत्ता है कि वह परमात्माको घटघटवासी मानता है। ईश्वर श्रद्धा और भक्तिके भूखे हैं और यही दोनों साधन हैं जिनसे उनकी प्राप्ति हो सकती है। उनका एकबार भी श्रद्धा से नाम लेने पर वे कविके वचन 'पांव पियादे धाये" के अनुसार अपने भक्त की रक्षाके लिये नंगे पैर ही दौड़ पड़ते हैं। यही भारत की भूमि है जब द्रौपदीके करुण क्रन्दनपर भगवान ने उसकी रक्षाकर दस सहस्र हाथियों की शक्ति रखनेवाले दुष्ट दुःशासनका बल तो घटा दिया किंतु द्रौपदी का दस हाथ चीर न घटने दिया। भगवानके स्मरणसे सारे दोष पाप धुल जाते हैं और हृदयमें ज्ञान और भक्तिका प्रकाश हो जाता है। धर्मके सामने संसारकी सारी वस्तुएं तुच्छ हैं। भगवान् का एक अक्षर का नाम ॐ और दोका राम है। राम कहने में भी पवित्र है और सुननेमें भी पवित्र है। रामकी महिमा मैं कहांतक कहूं। जितने स्थावर और जंगम हैं उन सबमें राम रम रहा है। वे अखिल विश्वमें रम रहे हैं इसलिये उनका नाम राम है। प्रातः काल उठते ही:-

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।

सबको कहना चाहिये। ब्राह्मणसे लेकर चाण्डाल तकको "नमो नारायणाय" और "ॐ नमः शिवाय" मन्त्रका पाठ करना चाहिये। लोग हरि और हरमें भेद समझते हैं किन्तु ब्रह्मा हरि और हर यह तीनों परमात्माके तीन रूप हैं इनमें कुछ भी भेद नहीं है। लोग कहते हैं कि ईश्वर हमें दिखाई नहीं देते। सूर्यके सिंहासनपर बैठे हुए नारायण नित्य सुबह आते हैं और दिन भर आकाश मण्डलमें सवारी में रहकर शाम को जाते हैं, किन्तु मूर्ख मनुष्य फिर भी उन्हें नहीं देखता वे नित्य सुबह आते और शामको जाते हैं। प्रत्येक भाई और बहिनको चाहिये वे सूर्य नारायण को अर्घ दें और सन्ध्योपासन करें। रेलमें, सफरमें, मेलेमें, सब जगह ब्राह्मणसे लेकर चाण्डाल तक 'नमः शिवाय' का जप कर सकता है। यह ब्राह्मणसे लेकर

चण्डाल तक सबकी चपाती है और इसपर सबका समान अधिकार है। जिस प्रकार सूर्यनारायण गरीब की झोंपड़ीसे लेकर राजाके महलोंतक सबको समान प्रकाश देते हैं उसी प्रकार यह मन्त्र सबके हृदयोंको एक समान पवित्र करता है।

आप भला तो जग भला।

[ले० श्री० भोले बाबा अनूपशहर]

यस्य स्मरण मात्रेण आप्त कामो भवेन्नरः।
परं सिद्धिमवाप्नोति तं वन्दे गोपी वल्लभम्

छप्पय

काम बिगारे काम, काम सब काम सुधारे।
काम करे बदनाम, काम ही नाम उधारे॥
भव भटकावे काम, काम भव संकट टारे।
काम मिलावे राम, काम जीवन उद्धारे॥
आप भला तो जग भला, बुरा न भोला कोय है
जो जानत है मर्म यह, ज्ञानी ध्यानी सोय है

काम! तेरा भला करे राम! तूने बना दिया काम! तूने मुझे भव से तारा, तूने मेरा संकट टारा किया तूने परम उपकार, तू ही मेरा लंगोटिया यार। तेरे अनुग्रह से मेरा बेड़ा हुआ पार है, तेरा मेरे ऊपर बड़ा अभार है। तू मुझे जी से भी अधिक प्यारा है, तूने मेरा बिगड़ा हुआ काम सुधारा है! निष्काम बनाया, आप्त काम किया! परमधाम दिखलाया, पूर्ण काम किया। घूमने से छुटाया, निश्चल किया, शोक मोह भगाया, अटल किया! जर से अजर किया। मर से अमर किया! भोग छुड़ाकर योग में लगाया, रोग मिटाकर आरोग्य बनाया। अज्ञान लेलिया, सुज्ञान दे दिया! बंधन काटा, मुक्त किया, ज्ञान विज्ञान संयुक्त किया! जितनी तेरी प्रशंसा करूं, थोड़ी है। मैं मेरा मिटा दिया जो है सो जिता दिया। न तू रहा न मैं रहा, जो था सोही रह गया। कर्जा बेबाक हुआ, बही खाता पाक हुआ!

जंगल में धूल पर लेटा हुआ एक अवधूत धीरे २ ऊपर के वाक्य कह रहा था, एक शिष्ट पुरुष कान लगा कर सुन रहा था, पिछले दो वाक्य सुन न सका, सामने आकर हाथ जोड़ कर कहने लगा:

शिष्ट: महाराज! आप यह क्या उलटी गंगा बहा रहे हैं? क्या महात्माओं के ये ही लक्षण हैं। अच्छा बुरा न देखना, सबका शुभ गीत गाना, बुरे को भी अच्छा बताना मेरी समझ में तो आपको ऐसा करना उचित नहीं है! यह तो मैं जानता हूं कि

आपको विधि निषेध कुछ नहीं है ! आपको न सही हमको तो है ही ! आपको हम लोगों के हित की बात कहनी चाहिये । आप समझते होंगे कि हमको तो सब पागल समझते हैं, इसलिये हमारा कथन कौन सुनेगा और कौन मानेगा, हम चाहे जो कुछ बका करें, कुछ हानि नहीं है ! महाराज ! ऐसा नहीं है, दुष्ट पुरुष आपको भले ही पागल समझते हों, शिष्ट पुरुष आपको पागल नहीं जानते ! आपके ऊपर सबकी श्रद्धा है, सब को आपका वचन मान्य है . यदि ऊपर के समान आप उलटी २ बातें कहेंगे, तो आपके ऐसे वचनों से हमको अवश्य हानि होगी ! लोक शास्त्र से विरुद्ध वचन उच्चारण करने योग्य नहीं हैं ! मैं आपको शिक्षा नहीं देता किंतु सर्व साधारण की हानि समझकर आपसे प्रार्थना करता हूं ! संभव है, कि मेरी भूल हो । संसारियों की बुद्धि स्थिर नहीं होती . फिर भी आपने जो उलटी २ बातें कही हैं, उन बातों को कोई पंडित तो मानेगा नहीं संसार भर तो काम से तंग हो रहा है और आप काम की प्रशंसा कर रहे हैं ! ब्रह्मा से लेकर कीट पर्यन्त तो काम ने नचा रक्खे हैं, आप कहते हैं, काम ने मुझे संसार से तारा है ।

काम में इतने दोष हैं कि उनका कोई वर्णन नहीं कर सक्ता ! शेषनाग अपनी हजार जिह्वाओं से हजारों युगों तक काम के दोष वर्णन करते रहें तो भी उनका अंत नहीं आवेगा ! दिग्दर्शन मात्र कामके दोष आपके सामने वर्णन करता हूं:-

काम के वश हुआ मनुष्य सुनता हुवा भी बहिरा और देखता हुआ भी अंधा हो जाता है ! स्पर्श करता हुआ भी स्पर्श नहीं करता, कोमल कठिन, शीतोष्ण नहीं पहिचानता ! चखता हुआ भी मीठा कड़वा आदि नहीं जानता ! कड़वे को मीठा और मीठे को कड़वा समझता है ! सूंघते हुवे भी सुगंधि दुर्गंधि का ज्ञान उसको नहीं होता ! सुगंधि को दुर्गंधि और दुर्गंधिको सुगंधि जानता है ! हाथ होते हुए भी टोटा पैर होते हुये भी लंगड़ा, मुख होते हुये भी गूंगा हो जाता है। दुःख को आनन्द मानता है । क्षणभर के आनन्दाभास के लिये हमेशा के लिये सत्वहीन हो जाता है । काम के वश हुआ मनुष्य यथार्थ मनन नहीं कर सक्ता, सत्यासत्य का निश्चय करने में असमर्थ हो जाता है, गुरु शास्त्र का उपदेश भूल जाता है अचेत हो जाता है । उस समय उसे अपने कुल, गोत्र, जाति प्रतिष्ठा आदि का अभिमान भी नहीं होता ! ब्राह्मण शम दमादि गुणों को भूल जाता है; अशान्त, अदान्त हो जाता है ! क्षत्रीय शूरता, वीरता, धैर्यता को त्याग कर तेजहीन, कायर हो जाता है ! वैश्य कमती बढती तोलना, झूंठ सच बोलना, ग्राहक को बनाना भूल जाता है । और आपही सीका ग्राहक हो जाता है, शूद्र का तो कहना ही क्या है ! केवल गृहस्थ ही नहीं, ब्रह्मचारी वानप्रस्थ और संन्यासी तक भी काम वश हुये अपने ब्रह्मचर्य तप और वैराग्य से नष्ट भ्रष्ट होते हुये देखने में आये हैं ।

जैसे कर्मी पुरुष नियम पूर्वक अग्नि होत्र करता हुआ, अग्नि में घृतादि की आहुति देता हुआ स्वर्गादि उच्च लोकों के संस्कारों की वृद्धि करता है ऐसे ही कामी पुरुष दिन प्रतिदिन अग्नि रूप योषित में अपने वीर्य की आहुति देता हुआ काम भोग प्राप्ति के संस्कारों को बढ़ाता है, जैसे कोई परम भगवद्भक्त प्रेम पूर्वक षोडशोपचार सामग्री से सालिग्राम का पूजन करता हुआ, उनके चरणों में प्रेम की वृद्धि

करने के लिये सालिग्राम से प्रार्थना करता है, इसी प्रकार कामी पुरुष सोलह श्रृंगार की सामग्री से स्त्री की पूजा करता हुआ, स्त्री से अपना प्रीतिदान देने के लिये याचना करता है! जैसे कोई विष्णु भक्त षट्रस भोजनों से ठाकुरजी का भोग लगाकर उनकी प्रसादी पाकर प्रसन्न होता हुआ, उनके प्रसाद से अपने को कृतार्थ मानता है ऐसे ही कामी षट्रस व्यंजनों से स्त्री को प्रसन्न करता हुआ अपने को कृतकृत्य मानता है। जैसे कोई शंकर भक्त पुष्पादि से शंकर का अभिषेक करता हुवा शंकर से जन्म २ भक्ति दान देने की स्तुति करता है, ऐसे ही कामी पुरुष काजल आदि से स्त्री का अभिषेक करके उसकी प्रेमदृष्टि बनी रहने की अभिलाषा करता है! जैसे कोई राम अथवा कृष्ण का भक्त अपने इष्ट का मानसी पूजन करता हुआ, इष्ट के एक २ अंग प्रतिअंग का ध्यान करता हुआ तन्मय होने की इच्छा करता है, ऐसे ही कामी पुरुष स्त्री के अंगोपांग का निरंतर ध्यान करता हुआ स्त्री मय होना चाहता है! जैसे कोई योगेश्वर परमतत्व का ध्यान करता हुआ पृथिवी आदि स्थूल सूक्ष्म भूतों का लय करता हुआ केवल चिन्मात्र रूप में स्थित होकर परमानन्द के सिंधु में डूब जाता है, ऐसे ही कामी पुरुष अपनी सब इंद्रियों की वृत्तियों का लय करता हुवा अपनेको भी भूलकर स्त्रीमय होकर आनन्दाभास में मुग्ध होकर रस निकले हुये गन्ने के समान निरस होकर छूंछा हो जाता है! जैसे कोई परम विज्ञानी उपनिषद् रूप वीथियों में विचरता हुआ स्थूल शरीर से लेकर अहंकार तक का विस्मरण करता हुआ सत्यासत्य से विलक्षण सत्स्वरूप अपने आत्मा में ही क्रीड़ा करता हुआ स्वाराज्य निर्वाण का अनुभव करता है, इसी प्रकार कामी पुरुष अपने कुलादि का विस्मरण करके स्त्रीके साथ क्रीड़ा करने से चौरासी लक्ष योनि रूप स्वाराज्य का राजा बन कर करोड़ों जन्म तक भ्रष्ट होता रहता है। जैसे कोई भाविक शिष्य गुरुकी सेवा सुश्रुषा करके सत्शास्त्र का अध्ययन करता है इसी प्रकार कामी पुरुष स्त्री की गुलामी करके काम शास्त्र का पठन पाठन करता है! सारांश यह है कि काम वश हुवा पुरुष बाजीगर के बंदर के समान स्त्री के इशारे पर नाचता रहता है! फिर भी उसे लज्जा नहीं आती!

काम वश हुई सूर्पनखा ने अपनी नाक कटवा कर लोक में हंसी कराई! रावण ने काम वश अपना और अपने कुटुम्ब का वध कराया: दुर्योधन ने काम वश अपना और अपने बांधवों का भीष्म द्रोणादि शिष्ट पुरुषों सहित नाश कराया! नारदजी ने कामवश बन्दर का मुख धारण किया शृंगी ऋषी कामवश समाधि से भ्रष्ट हुये! ब्रह्मादिक देवता भी काम वश होकर उचितानुचित करने को तैय्यार हो गये थे, ऐसा शास्त्रों से सुनने में आता है। जितने सिद्ध, महात्मा योगी भ्रष्ट हुये हैं, सब काम वश ही भ्रष्ट हुये हैं, यह तो पूर्व युगों का हाल है, आज कल तो कलियुग है ही, जिसको देखो, वह काम का कूकर होरहा है. जिनके मुखमें एकभी दांत नहीं है, जिनके बाल चांदी हो गये हैं वे भी नई बत्तीसी लगवा कर बालों में खिजाब लगाकर सफेद मुख को काला करके, दश पांच हजार रुपया खर्च करके भी अपनी पोती की उमर की नई दुलहन लेआते हैं, पीछे चाहे फजीता ही क्यों न हो! धनके लोभी बहुत से माता पिता भी कन्या के दुःख का विचार न करते हुये अपना स्वार्थ साधते हुये देखने

श्रीभगवद्भक्ति आश्रम के मुख्य मुख्य कार्य कर्ता।

Bhakti Pre - Rewa

में आते हैं . लड़का, लड़की, विवाह के योग्य हैं या नहीं इसका विचार भी उठ गया है, अपनी खुशी के लिये माता पाता बालकपन में लड़के लड़कियों का विवाह करके उनके जन्मभर के लिये कांटे बोदेते हैं! बच्चों को कामके दोष सिखाने चाहियें, ब्रह्मचर्य का महात्म्य बताना चाहिये, जिससे उनका और उनकी सन्तानका सुधार हो, ऐसा कोई नहीं करता, यह सब काम की महिमा है!

गीता में भगवान्ने काम को रजोगुण से उत्पन्न हुवा, बहुत खाने वाला, महापापी, महान् वैरी बताया है, उसी में काम क्रोध लोभ तीनों को नरक का द्वार बताया है और यह भी कहा है कि जो इनसे बचता है वह ही अपना श्रेय करने को समर्थ होता है। वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास आदि सब में काम के दोष वर्णन किये हैं और सबने एक मुख होकर ब्रह्मचर्य की प्रशंसा की है। आप उलटी काम की प्रशंसा करते हैं, अपको तो ब्रह्मचर्य की शिक्षा देनी चाहिये! ब्रह्मचर्य बहुत उत्तम गुण है। ऐहिक, पारलौकिक अभ्युदय और परमार्थ रूप मोक्ष की प्राप्ति कराने वाला ब्रह्मचर्य ही है। पतञ्जलि भगवान् कहते हैं कि ब्रह्मचर्य से महान् सामर्थ्य प्राप्त होता है और जिसको ब्रह्मचर्य की सिद्धि हो जाती है, वह अपने संकल्प मात्र से दूसरे को भी सामर्थ्य वाला बना सक्ता है। सनकादिक चार भाई, हनुमान भीष्म पितामह, दत्तात्रेय, जड़भरत, शुकदेवादि अनेक महात्मा ब्रह्मचर्य के कारणही ऊर्ध्वरेता होनेसे अन्य महात्माओं से श्रेष्ठ माने जाते हैं। पश्चिमी देशब्रह्मचर्यके कारणही आज कल भारत से बढ़े चढ़े हुऐ हैं। कामके गुण किसी शास्त्रमें नहीं कहे हैं आपका कौनसा पांचवां वेद है, जिसके प्रमाणसे आप कामके गीत गारहे हैं। श्रुति, युक्ति और अनुभव तीनों से आपका कथन विरुद्ध है। महाराज! हाथ जोड़कर कहता हूं, बुरा न मानिये, मरे को मारे शाहमदार! गिरे में हर कोई दो लातें मारने लगता है, दुनियां कामके वश हुई अंधी तो होही रही है अन्धाधुन्ध कर रही है जिसको देखो विषय भोगों में फस रहा है। जिनका इष्ट काम ही है वे आपके मुख से काम की प्रशंसा सुन कर अधिक काम में आसक्त हो जायंगे यदि कोई उन्हें समझावेगा तो आपका दृष्टांत देकर उसे चुप कर देंगे! फिरतो वह ही मसल होगी कि एक पापी नाव को ले डूबता है यानी जो पापी मल्लाह होता है, वह आप डूबता है और अन्य नाव में बैठने वालों को ले डूबता है। संसार से तारने वाले आप महात्मा लोग मल्लाह हैं, जब आपही ऐसी शिक्षा देंगे तो संसार समुद्र से उतरने की क्या आशा है! फिर तो सब डूबेंगे ही! आपही कहिये, डूबेंगे या नहीं। मेरी तुच्छ बुद्धि में तो ऐसा ही आता है! आप महात्मा हैं, महात्मा सबका हित करते हैं, शायद मेरी ही भूल हो. कृपा करके मेरा समाधान कर दीजिये . युक्ति सहित बात बच्चे की भी माननी चाहिये। युक्ति रहित बात ब्रह्मा की भी मानने योग्य नहीं है. ऐसा मैंने आप जैसे महात्माओं के मुखसे सुना है। बड़ों के सामने अधिक बोलना ठीक नहीं है मेरी इतनी ही प्रार्थना है कि जो कुछ मेरी भूल हो निकाल दीजिये!

अवधूतः (खिल खिलाकर हंसता हुआ) शाबाश भाई शाबाश! बहुत कम बोला! पूरा तार्किक है! केम्ब्रिज अथवा ओक्सफोर्ड में लौजिक (Logic मंतक) पढा दीखता है। बीकिन और स्पेन्सर की फिलोसोफी का भी अभ्यास किया

दीखता है ! हे शुद्ध बुद्धि ! साधुओं का संग किया हो ऐसा तेरी बातों से झलकता है, योगाभ्यासी, शास्त्राभ्यासी दीखता है। इतना ही नहीं शास्त्रों पर पूर्ण विश्वास और श्रद्धा करने वाला है, वाचक ज्ञानी ही नहीं, ज्ञानारूढ भी है, वैराग्यवान् भी जंचता है श्रुति, युक्ति और अनुभव तीनों का अनुकरण करने वाला है जैसे माया जीव को तीनों गुणों से घेर लेती है, जैसे शतरंज खेलने वाला घोड़े की किश्त देकर प्रति पक्षीके बादशाह को घेर लेता है, जैसे याज्ञवल्क्य पर गार्गिने प्रश्न रूपी बाण छोड़े थे जैसे प्रतर्दन राजा को इंद्रादि देवताओं ने घेर लिया था, जैसे मेघनाद ने हनुमान जी को ब्रह्मास्त्र में फांस लिया था ऐसे ही मुझे तूने सब तरफ से घेर लिया है निकलने का मार्ग ही नहीं रक्खा . काम के दोष और ब्रह्मचर्य के महात्म्य का जानने वाला आठों गांठ कुम्मेत है और चौदह विद्याका ज्ञाता है। पूछता है पांचवां वेद कौनसा है ? भाई . यदि तेरी सी बुद्धि सबकी हो जाय तो भारत ही नहीं दुनियां ही शीघ्र सुधर जाय ! बच्चा . वेद तो एकही है, एकही वेद अकरण भेदसे चार नामों से प्रसिद्ध है। भाई ! मात्र चार वेद के पढ़ लेने से काम नहीं चलता, वेद की चाबी महात्माओं के पास ही रहती है, वह ही पांचवां वेद है ! अभिप्राय यह है कि गुरु द्वारा पढा हुआ वेद ही यथार्थ फल दाता होता है। बिना गुरु कृपाके वेदका गूढ तत्व हाथ नहीं आता ! मैं जानता हूं, तूने गुरु द्वारा वेद पढा है, लोक के हित निमित्त प्रश्न करता है अथवा मैं जो कह रहा था, उसको पूर्ण रीति से आदि अन्त तक सुन नहीं पाया, अथवा अपना निश्चय रूप खूंटा दृढ करना चाहता है। इसलिये तर्क करता है। भाई ! यद्यपि काम के दोष जैसे तैंने वर्णन किये हैं ऐसे ही हैं फिर भी संसार भरमें कोई वस्तु बुरी ही हो, ऐसा नहीं है, गुण दोष सब में हैं। यद्यपि काम में अधिक दोष ही प्रतीत होते हैं, फिरभी काममें बहुत गुण भी हैं। मान लिया काम में कोई गुण न भी हो तो भी जब हम काम से मिलकर काममय हो गये हैं तो हम को तो काम ही से काम लेना होगा ! लोक में कहावत है कि खोटा बेटा और खोटा पैसा समय पर काम आता है ऐसे ही काम खोटा होने पर भी जग से मुक्त करने वाला है। जो जिसको बांधता है, वह ही उसको मुक्त करता है, कामने ही हम को बांधा है, काम ही मुक्त करेगा काम आत्मा से उत्पन्न होकर आत्मा को ही बांधता है, इसलिये खोटा बेटा इसको कहा है यह तो तू मानता ही है कि, कामने सबको बांध रक्खा है और काम ही अनर्थ का कारण है अब मैं तुझे यह बात बताता हूं कि काम मुक्ति का हेतु किस प्रकार होता है। देख गुण भेद से अशुभ काम और शुभ काम दो प्रकार का कामहै। रजोगुण तमोगुण से मलिन हुये सत्वगुण वाला काम अशुभ कहलाता है और रजोगुण तमोगुण से रहित अथवा रजोगुण तमोगुण से न दबने वाले शुद्ध सतोगुण वाला काम शुभ कहा जाता है। अशुभ काम जैसा तूने कहा ऐसा ही अनर्थ का कारण है। शास्त्रकारों ने इस काम का ही निषेध किया है। संसार में डुबाने वाला अशुभ काम सर्वथा सब को त्यागने योग्य है। शुभ काम संसार से तारने वाला है। जब तक संसार से पार न हो तब तक शुभ काम मुमुक्षु को त्याग करने योग्य नहीं है किंतु ग्रहण करने योग्य है। जैसे नदी के पार पहुंच जाने पर नाव की आवश्यकता नहीं रहती ऐसेही संसार समुद्रसे पार होने

के बाद शुभ काम की भी आवश्यकता नहीं रहती। यद्यपि काम स्वरूप से शुद्ध ही है क्योंकि शुद्ध परमात्मा से उसकी उत्पत्ति यानी आविर्भाव हुआ है। कार्य का कारण से अभेद होता है। गीता के सातवें अध्याय में भगवान ने कहा है कि प्राणियों में धर्मसे अविरुद्ध काम मैं हूं, श्रुति कहती है कि ईश्वरने इच्छा की, सृष्टिको रचा, इच्छा कामका ही नाम है, व्यास भगवान काम के कारण से ही ईश्वर को सृष्टिकर्ता सिद्ध करते हैं और अन्य शास्त्रों का निरास करते हैं। काम चेतन में ही हो सक्ता है जड़ में नहीं, इसलिये काम से ईश्वर जगत् का कर्ता सिद्ध होता है। जीव को अनादि वासनाओं के कारण शुभ काम की तरफ रुचि नहीं होती। जब अनेक जन्मों के पुण्य के उदय होने से कुवासनायें न्यून हो जाती हैं तब जीव की रुचि शुभ काम की तरफ होती है। शुभ कामके कारण जीवको सर्वके कारण रूप ईश्वर की प्राप्ति की इच्छा होती है। ईश्वर प्राप्ति की इच्छा का नाम शुभेच्छा है। शुभेच्छा ज्ञानकी अथवा भक्ति की प्रथम भूमिका है। ज्ञान और भक्ति भिन्न २ नहीं हैं, एक ही हैं। ईश्वर के जानने के साधन का नाम ज्ञान है और ईश्वर में भाव यानी प्रेम करने का नाम भक्ति है। ज्ञानसे भाव होता है। भावसे ज्ञान की वृद्धि होती है। दोनों परस्पर एक दूसरे के सहकारी हैं, साथ ही रहते हैं। इस अवस्था में ईश्वर भक्त जितने कार्य करता है, सब ईश्वर की प्रसन्नता के लिये निष्काम ईश्वरार्पण रूप करता है, उनका फल संसार के भोग नहीं चाहता किन्तु भगवत् प्राप्ति चाहता है। इस समय उसको सब इन्द्रियोंके व्यापार भगवत् की प्रसन्नता के लिये होते हैं। कानों से भगवत् और भगवद्भक्तों के गुणानुवाद सुनता है, आंखों से भगवद्भक्तों की खोज करता है, जैसे पूर्व में उसे कोमल वस्त्रादि प्रिय लगते थे, अब वे अच्छे नहीं लगते, कोमल कठिन, मोटे महीन सबको एक समान मानता है, निर्वाह मात्र से प्रयोजन रखता है, शीतोष्ण पर भी विशेष ध्यान नहीं देता। भोजन भी जीव निर्वाह मात्र करता है, षट्रस भोजन नहीं चाहता, पेट भरने मात्र से मतलब रखता है, जानता है कि पेट में जाकर सब एक हो जाता है, तब मिष्टान्नादि की इच्छा करके चित्तको क्यों दुःखी करना, प्रारब्ध वश रूखा सूखा जो आजाय, उसीको ईश्वरकी प्रसादी मानकर ठंडा पानी पीकर संतुष्ट रहना चाहिये। पुष्प, माला चन्दनादि में भी विशेष प्रेम नहीं करता, साफ सुथरे स्थान आदि को ही पर्याप्त मानकर सुखी होता है। हाथों से धर्म पूर्वक धन कमाता है, स्त्री पुत्रादि अधिकारियों को यथा योग्य बांटकर साधु, ब्राह्मण अतिथि आदि सत्पुरुषों की सेवा करता है, हाथ ऊंचा रखता है, देने में रुचि रखता है, किसी का धन लेना नहीं चाहता, किसी के आगे हाथ नहीं फैलाता, पैरों से विना अर्थ नहीं घूमता, यथाप्राप्त व्यापार के लिये जाता है अथवा साधु महात्माओं, देव मंदिर आदिके दर्शन हेतु जाता है। विना प्रयोजन कहीं आता जाता नहीं है मुखसे भगवन्नाम का जप करता है, सत्शास्त्रों का पाठ करता है, सत्य बोलता है, कम बोलता है, दूसरे का हित करने वाली मीठी वाणी बोलता है, किसी से कठोर वचन नहीं बोलता, सोच विचार के साथ बोलता है। यदि ब्रह्मचारी वानप्रस्थ संन्यासी होता है तो सर्वथा अष्ट मैथुन का त्याग करता है, यदि गृहस्थ होता है, मात्र संतान उत्पत्ति के हेतु शास्त्राज्ञानुसार स्व स्त्री से संयोग करता है।

जिस प्रकार सब लोग स्वाभाविक रागद्वेष रहित मल मूत्र का त्याग करते हैं इसी प्रकार वह रागद्वेष रहित यज्ञार्थ ईश्वर प्रीति अर्थ काम करता है। सब जगत् को अपने इष्ट देवका स्वरूप मानता है. किसी से वैर भाव नहीं रखता। राजा प्रजा, स्त्री, पुत्र, कुटुम्बी, पड़ोसी, देशी, विदेशी सब की यथा योग्य तथा यथा अधिकार सेवा करता है, ऐसा मानता है कि प्रथम जन्मों में मैंने जिनर का कर्जा लिया था उन सबका ऋण चुकाने के लिए मेरा जन्म है, ऐसा समझ कर यथा सामर्थ्य उनको देता ही है, लेनेकी आशा नहीं करता और आगेके लिए किसीका ऋणि होना नहीं चाहता। मन से वाणी से सबका हित चाहता है, सुने हुये शास्त्रों का विचार करता रहता है, संसार के तुच्छ पदार्थों के लिये आग्रह नहीं करता, केवल सत्य रूप परमात्मा की प्राप्ति के लिये ही सत्याग्रह करता है। ईश्वर से इस प्रकार प्रार्थना करता रहता है:-हे ईश्वर! मुझे इस संसार समुद्र से मुक्त कर दीजिये मेरा अन्तःकरण शुद्ध कर दीजिये, काम, क्रोधादि दोषों को मेरे हृदय में से निर्मूल कर दीजिए, हे अंतर्यामी ईश्वर। आप मुझ पर कब कृपा करेंगे, मुझे शान्ति कब प्राप्त होगी, कब संताप आवेगा, कब मैं विवेकादि साधन संपन्न होकर आपका साक्षात्कार करूंगा, हे प्रभो! शीघ्र मेरा उद्धार कीजिये मैं आपकी शरण हूं आपके सिवाय अन्य कोई मेरी रक्षा करने वाला नहीं है! माता, पिता गुरु सब मेरे तो आप ही हैं! सब भक्तों की आपने रक्षा की है क्या मैं भक्त नहीं हूं, मेरी भी रक्षा कीजिये, अब मैं आपके द्वारको छोड़कर किसके द्वार पर जाऊं यदि मैं भक्त नहीं भी हूं तो आप तो सर्व शक्तिमान, सर्व प्रेरक हैं, आपही प्रेरणा करके मुझे अपने चरणों में लगा लीजिये! अनेक भक्तों को आपने तारा है, द्रौपदी का चीर बढाया, गज से ग्राहकी रक्षा की, प्रह्लाद के लिये नृसिंह रूप धारण किया ब्रजवासियों की रक्षा के लिये गोवर्द्धन पर्वत उठाया, वसुदेव देवकी को बंदी खाने से छुटाया, कंस को मारा, रावण को मारा, विभीषण को लंका का राज्य दिया, बंदरों की सेना बनाई, समुद्र में पत्थरों को तैरा कर पुल बनाया, गौतम नारी पत्थर की थी उसे भी तो आपने दिव्य बना दिया था। क्या मैं पत्थर से भी भारी हूं? क्या मुझ में बन्दरों कीसी भी भक्ति नहीं हैं! नहीं है तो नहीं भी सही, आप तो चाहे जो कुछ कर सक्ते हैं, अभक्त को भक्त बनाने में आपको कितनी देर लगती है! हे भक्तवत्सल! हे पतित पावन! हे दीनबंधो! हे करुणानिधान! हे प्रणतातरहर! सबके दुःख आपने दूर किये हैं, सबकी याचना आपने पूर्ण की है! आप तो परम दानी हैं, फिर मेरे लिये इतनी कृपणता क्यों कर रहे हैं? सबको आपने अपनाया है, मुझे भी अपनाइये, अपनाइये, अपनाइये! देर न कीजिये, आपके द्वार से लौट कर नहीं जाऊंगा, जब तक आप करुणा न करेंगे, यहीं पड़ा रहूंगा, नहीं हटूंगा, नहीं हटूंगा! अपनाइये, अपनाइये, अपनाइये, भला बुरा जैसा हूं, आपका हूं, भक्तोंको आपने तारा तो क्या तारा! अभक्त को तार देंगे तब मैं जानूंगा कि आप तारने वाले हैं! तारिये चाहे मारिये, आपका कहलाकर अब दूसरेका तो कहलाऊंगा नहीं। मेरे आपके संबन्ध बहुत हैं, मैं दीन हूं आप दीनबन्धु हैं, मैं पतित हूं, आप पतित पावन हैं मैं अंश हूं आप अंशी हैं मैं उपासक हूं आप उपास्य हैं, मैं सेवक हूं आप स्वामी

हैं, इत्यादि अनेक संबंध हैं, अब मैं टलने वाला नहीं हूं, मरि हों पर टरि हों नहीं! यह मेरी अन्तिम प्रतिज्ञा है।

सोलह कला।

हे शिष्ट गीता में भगवन् के वचन हैं कि मैं अपने भक्तोंका शीघ्रही संसार समुद्रसे उद्धार करता हूं। जब कोई अनन्य भक्त भगवन् से इस प्रकार प्रार्थना करता है तो शीघ्रही भगवान उसको संसार समुद्रसे तार देते हैं। सच्ची भक्तिही भगवन् को प्यारी है, भक्ति से शीघ्र ही मनुष्य का कल्याण होता है। जैसे चांद में सोलह कलायें हैं इसी प्रकार जीव की भी सोलह कलायें हैं। जैसे कृष्ण पक्षमें चांदकी एक २ कला क्षीण होती जाती है और अमावस्या को एक रह जाती है इसी प्रकार कुसंगसे जीवकी एक २ कला घटकर अंतमें एक कला इच्छा रह जाती है और जैसे शुक्ल पक्षमें चांदकी एक २ कला बढकर पूर्णिमा को चन्द्रमा पूर्ण सोलह कला युक्त होता है इसी प्रकार सत्संग से एक २ कला बढ़कर अंत में वह पूर्ण सोलह कलाओं से युक्त होजाता है। जब जीव संत महात्माओं का संग करता है तो इच्छा रूप प्रथम कला से श्रद्धा रूप दूसरी कला उत्पन्न होती है, गुरु वेद वाक्य पर श्रद्धा उत्पन्न होने से ईश्वर की भक्ति रूप तीसरी कला विद्या उत्पन्न होती है। ईश्वर भक्ति से कुटिलता दूर होने से चौथी कला आर्जव यानी सरलता उत्पन्न होती है, आर्जवता से निष्कपट हो जाने पर शुद्ध बुद्धि रूप प्रज्ञा उत्पन्न होती है, शुद्ध बुद्धि से सबमें ईश्वर रूप देखनेसे करुणा यानी दया उत्पन्न होती है, करुणा से सब जीवों पर दया करने से क्षमा उत्पन्न होती है यानी निन्दा स्तुति के सहन करने की शक्ति उत्पन्न होती है, क्षमा से मन क्षोभ रहित होता है, क्षोभ रहित मन होने से मेधा उत्पन्न होती है। मेधा धारण शक्ति को कहते हैं, मेधा से जीव में सूक्ष्म तत्व के ग्रहण करने का सामर्थ्य आता है, सामर्थ्य से संतोष उत्पन्न होता है, संतोष से परमानन्द की प्राप्ति होने से जीव में वीर्य यानी सब प्रकार का सामर्थ्य आजाता है, वीर्य से विचार उत्पन्न होता है यानी सूक्ष्म तत्व में स्थिति होने लगती है। विचार से समता उत्पन्न होती है, समता से धृति उत्पन्न होती है, फिर जीव महान् संकट में भी धैर्य से विचलित नहीं होता, धृति से विज्ञान यानी तत्व साक्षात्कार होता है, तत्व साक्षात्कार होने से उसकी गई हुई प्रतिष्ठा प्राप्त होती है, इस प्रतिष्ठा का नाम कीर्ति है यह सोलहवीं कला है। इस प्रकार सत्संग से इच्छा, श्रद्धा, विद्या, आर्जव, प्रज्ञा, करुणा, क्षमा, विवेक, मेधा, संतोष, वीर्य, विचार, समता, धृति, विज्ञान, कीर्ति इन सोलह कलाओंसे जीव युक्त होता है सोलह कलाओंसे पूर्ण पुरुष ईश्वर के सगुण और निर्गुण दोनों प्रकार के रूपोंको जाननेको समर्थ होता है, यानी जिस पुरुषमें ये सोलह कलायें कल्पित हैं, वहही पुरुष मेरा आत्मा है ऐसा जानता है। ऐसा जाननेसे पुरुष कृतकार्य हो जाता है और उसका कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता। जब तक पुरुष कृतार्थ न हो तब तक उसे इच्छा आदि सोलह कलाओं की आवश्यकता है, उनमें भी इच्छा मुख्य है क्योंकि इच्छा विना अन्य कलाओं का आविर्भाव नहीं हो सक्ता। इच्छा काम को कहते हैं, इसलिये मैं काम की प्रशंसा कर रहा था। यह प्रशंसा शुभ काम की ही थी। प्रथम शुभ कामनाओं से अशुभ कामनायें हटाई जाती हैं, जब अशुभ कामनायें हट

जाती हैं तब शुभ कामनायें शेष रहती हैं। शुभ कामनाओं से ईश्वर भक्ति द्वारा ईश्वरकी प्राप्ति होती है। ईश्वर प्राप्तिके बाद शुभ कामनायेंभी त्याग दीजाती हैं क्योंकि फिर उनका प्रयोजन नहीं रहता। गुण देखनेसे भी संबंध होता है और दोष देखनेसे भी संबंध होता है यानी संसार के पदार्थों में राग करने से भी संबंध होता है और द्वेष करनेसे भी संबंध होता है इसलिये विवेकी पुरुष न तो किसीमें राग करता है, न किसीसे द्वेष करता है, समान रहता है। समान रहने से उसे कोई बुरा नहीं दिखाई देता, सब में गुण ही भासते हैं, वस्तुतः संसार में कुछ बुरा है भी नहीं, जिसमें हम राग करते हैं, उसे अच्छा समझते हैं, जिससे हम द्वेष करते हैं, उसे बुरा कहते हैं, जिससे हमको कुछ मतलब नहीं होता, उसे अच्छा बुरा कुछभी नहीं कहते। अच्छा, बुरा, अथवा दोनों का प्रभाव हमारी बुद्धि में है। सोने को हम अच्छा मानते हैं, सर्प को शत्रु जानते हैं और तृण को हम न अच्छा कहते हैं, न बुरा, यह सब मन की कल्पना है। काम हमारी भावनानुसार भोगों में फसाता है, नरक स्वर्ग में लेजाता है और वह ही मोक्ष प्राप्ति का कारण होता है। तब स्वभाव से काम बुरा नहीं है, हमने ही उसको बुरा बना दिया है।

एक भगवद्भक्तने बहुत दिनों तक भगवान् की नवधा, प्रेमा और परा भक्ति की, तब एक दिन काम प्रत्यक्ष होकर कहने लगा:-

कामः-हे भाविक! मैं ईश्वर से उत्पन्न हुआ हूं, भागवत में ईश्वर का पुत्र प्रसिद्ध भी हूं, मुझे ईश्वर की आज्ञा है कि सब की इच्छायें पूर्ण कर, जिनको भोग प्राप्ति की इच्छा हो उनको भोगों की प्राप्ति कर, जिनको मोक्ष की इच्छा हो, उनको मोक्ष की प्राप्ति कर। तूने बहुत दिनों तक भगवान की भक्ति की है और तुझे संसार समुद्रसे तरनेकी इच्छा है इस लिये तू अब मेरा त्याग करदे, देख, जो उत्पन्न होता है अवश्य मरता है, अमर एक परमात्मा ही है मैं और तू साथ २ ही उत्पन्न हुये हैं तेरी इच्छा से ही मैं उत्पन्न हुवा हूं इसलिये मैं और तू दोनों मरने वाले हैं, मरने वाला सुखी नहींहो सक्ता, भय रहित भी नहीं होसक्ता, मैं न होऊंतो तू स्वभाव से सुखीही है, मेरी उत्पत्ति से तेरीउत्पत्ति तुझे भासती है, नहीं तो तू अजरअमर है। तू मुझे मुक्त कर दे फिर तू मुक्त ही है। मैं मेरा मेट दे, न तू है, न मैं हूं, जो है सो ही है।

हे शिष्ट! इतनी सुनकर भगवद्भक्त ने काम का त्याग कर दिया और अपने स्वभाव में टिक गया। देख, काम की सत्ता वस्तुतः नहीं है, वस्तुतः होती तो शिवजी उसको भस्म न कर सक्ते, भस्म कर दिया था, इससे सिद्ध होता है कि वह वस्तुतः था ही नहीं, भावका अभाव कभी नहीं होता और अभाव का भाव कभी नहीं होता, यह गीता में भगवान का वचन है। तब यदि काम भाव रूप होता तो शिवजी उसे कैसे जलासक्ते? यदि तू कहे कि फिर जिला दिया था तो ऐसा नहीं है, वस्तुतः नहीं जिलाया, मात्र उससे प्रेम करने वाली रतिके लिए ही जिला दिया है। जिनको किसी प्रकार की इच्छा है उनके लिए काम जी रहा है नहीं तो मरा हुवा ही है तू तो तेरे कथन से परम भगवद्भक्त दीखता है, अब तू काम की निन्दा करनी छोड़ दे और ऐसा निश्चय कर कि, काम तीनों काल में है ही नहीं! तूने वेद शास्त्र, पुराण उपपुराण देखे हैं और सन्त महात्माओं का संग किया है, सब एक मुख होकर तो कह रहे हैं कि एक परमात्मा ही है, परमात्मा के

सिवाय कुछ नहीं है, फिर तू दूसरा क्यों मानता है जब तक तू काम से राग अथवा द्वेष करता रहेगा, मुक्त कभी नहीं होगा ! निरन्तर ऐसी भावना किया कर कि दूसरा है ही नहीं, जो कुछ भासता है, भ्रम रूप है, तेरी ही कल्पना है, तेरी ही इच्छा है तेरा ही रचा हुवा प्रपंच है, जब तू सो जाता है, प्रपंच कहां चला जाता है, समाधि में उस का पता नहीं रहता, फिर दूसरा कहां है। एक परमात्मा अखंड एक रस व्यापक है, न घटता है, न बढता है, ज्योंका त्यों जैसे का तैसा है, न क्रोध है, न लोभ है, न मोह है. सर्वत्र परिपूर्ण एक चिदानंद संदोह है, न मैं हूं, न तू है, जो है सोही है ! ॐ तत्सत् इतना कहता हुवा अवधूत अन्तर्ध्यान हो गया और शिष्ट पुरुष भी उसके कथनानुसार वर्तता हुवा सुखी हुवा ! इत्यति शोभनम्।

पाठक ! अवधूत और शिष्ट पुरुष ये दोनों तो आकाश में उड़ने वाले थे, हम तुम तो पृथ्वी पर रहने वाले हैं। भाई ! यह तो सोलह कलाओं से पूर्ण थे, हम में तो एक कला ही है और वह भी अमावस्या के चन्द्रमा की कला के समान न मालूम कहां अन्धेरे में घूम रही है, अच्छा बुरा नहीं पहिचानती ! टटोल २ कर चल रही है. इन के तो पर थे हमारे तो अच्छी तरह पैर भी नहीं हैं ! ये तो पक्षी थे, हम तुम तो निर्पक्ष मनुष्य हैं. भाई ! पर जल्दी से थोड़े ही आ जाते हैं, जब चींटी मरने को होती है तब पर निकलते हैं ! ऐसे पर लेकर क्या करोगे ? अभी कुछ दिन दुनियां की सैर देख लो ! अन्त में मरना तो पड़ेगा ही क्योंकि जो जन्मता है, वह अवश्य मरता है यह सुन ही चुके हो, फिर भी जल्दी क्यों करनी ? समय पर ही अन्न पकता है, ज्ञानियों और ज्ञानियों के अनुयायियों को आकाश में उड़ने दो, जब समय आजायगा तब हम तुम भी उड़ने लगेंगे ! अभी तो पृथिवी पर रह कर चलना फिरना सीख लो, अपनी टांगों पर खड़े होने लगो, फिर हरि इच्छा हुई तो पर भी आ जायंगे, तब हम तुम भी उड़ने लगेंगे ! अभी तो 'भक्ति' का पाठ करो, भगवत् भक्त बनो, भगवत् की प्रसन्नता के लिये सब कार्य करो अपनी कामनायें त्याग दो, दूसरों के लिए जिओ, इसी का नाम भगवद्भक्ति है। सब जगत् ईश्वर का बनाया हुवा है तब ईश्वर रूप ही है, सब जीवों को ईश्वर ने उत्पन्न किया है, सब का पिता एक ही है तब सब भाई बहिनें ही हैं। मोठ से मोठ बड़ी नहीं होती, तब बड़ा छोटा कोई नहीं है, सब बराबर के भाई हैं, बराबर की बहिनें हैं. मिल झुलकर भगवत् गुण गाओ, परस्पर प्रेम करो, हंस खेलो बखत कट जायगो, को जाने कितकूं को रम जायगो ! यह गंवारू मसल है, किसी बड़े विद्वान् की कही हुई है, गंवार की कही हुई नहीं है ! इसी पर आज कुछ विचार करते हैं। भाई ! अपने अपने स्वभाव में टिकना ही हंसना खेलना है, स्वभाव से हटने में ही दुःख का मोल लेना है। सब अपने अपने स्वभाव में टिक जाइये, हंसी खुसी आयु बिताइये, मन में मैल न लाइये, न बड़े बनो न छोटे, जैसे हो वैसे ही बने रहो ! आनन्द तुम्हारे पीछे २ भागता फिरेगा ! शोक मोह तुमसे किनारा कर जायंगे !

स्वभाव स्थिति।

ब्राह्मण वह ही है, जो सब में ब्रह्मको देखता है, जिसके सब कर्म ब्रह्मार्पण रूप सब लोकों के हितके लिये होते हैं, ऐसा ब्राह्मण सब का सिर है, उसके चरण सबको पूजनीय हैं। क्षत्रीय वह है, जिसने

माया के किले को जीत लिया है और तन मन से सबकी रक्षा करता है, ऐसा क्षत्रिय राजा के समान मान देने योग्य है उसकी भुजाएँ विष्णुभगवान की भुजाओं समान पूजने योग्य हैं। वैश्य वह है, जिसका व्यापार कृषि आदि सबके पालन पोषण अर्थ होता है उसका पेट सबको भरना उचित है। शूद्र वह ही है, जो शोक कभी नहीं करता, यदि करता है तो सबके लिये करता है, शूद्र सबका आधार है तब सबको डाटे रहना शूद्र का धर्म है और शूद्र की सहायता करना भी सबका धर्म है। ब्रह्मचारी वह ही है, जो स्वयं ब्रह्मचर्य का पालन करता है और सबको अष्ट मैथुन का त्याग सिखलाता है। ऐसे ब्रह्मचारी से सबका वीर्य बढ़ता है, गृहस्थ वही है, जिसने घर को ही नहीं ब्रह्मांड भर को ग्रहण कर रक्खा है छोटे बड़े सब जिसकी गृहस्थी हैं! वानप्रस्थ वह ही है जो संसार वनमें रहने वाले सब वन वासियों को अपना तप देने को तैयार है। संन्यासी वह ही है जिसने द्वेष का त्याग कर दिया है, सबमें जिसकी समान प्रीति है। कुटीचक वह ही है, जिसकी कुटी सबकी कुटी है और जो सबकी कुटी अपनी मानता है। बहूदक वह ही है, जो जलके समान सबको तृप्ति करता है। हंस वह ही है जो सबको हंसाता है। परम हंस वह ही है जो सबको भक्ति मणि लुटाता है और अवधूत वह ही जो सबके पाप धोता है। हिन्दू वह ही है, जिसको हिन्दुस्तान में आये हुए सब ही प्यारे हैं, मुसलमान वह ही है, जो खुदी को त्याग कर एक खुदा सबमें देखता है। ईसाई वह ही जो ईसा के समान सबके हितके लिये स्लीव पर चढ़ने को तैयार है। आर्य वह ही हैं, जो सबको आर्य मानता है। जैन और बौध वह ही है, जिसको सबही बुद्धदेव और जिनदेव के समान प्यारे हैं। मनुष्य वह ही है, जो सबको मनुजी की सन्तान मानता है। रामायण पढ़ने वाला वह ही है, जो सब ब्रह्मांड भर को सिया राममय देखता है गीता का पाठक वही है जो कर्ताधर्ता ईश्वर को मानता है। निमित्त मात्र अपनेको कर्ता समझता है, भागवत् का पारायण करने वाला वह ही है, जो परीक्षित के समान सात दिन में अपने को मरने वाला मान कर सबसे वैर प्रीति त्यागकर कृष्ण भगवान् में तन्मय है, वेदपाठी वह ही है, जो सबको अपना स्वरूप जानता है, कुरान पढने वाला वह ही है, जो सबको खुदा का बन्दा समझता है, इंजील पढने वाला वह ही है, जो थप्पड़ खाकर दूसरा गाल सामने कर देता है, धर्म पदका जानने वाला वह ही है जो जीवकी हिंसा नहीं करता, अहिंसक वही है जो कभी क्रोध नहीं करता, सत्य व्रतधारी वहही है जो सत्य व्यवहार करता है, चोरी न करने वाला वह ही है, जो निष्कपट है। त्यागी वह ही है, जिसने वैर त्याग दिया है, पवित्र वह ही है, जिसने कुटिलपन छोड़ दिया है, संतोषी वह ही है, जो सबकी संतुष्टि चाहता है। स्वाध्याय वह ही करता है, जो किसी से वाद विवाद नहीं करता। तपस्वी वही है जो दूसरे को नहीं तपाता और ईश्वर प्रणिधान करने वाला वह ही है, जो चराचर को ईश्वर रूप जानता है। भगवद्भक्त वह ही है जो बलिके समान सब कुछ देने को तैयार है, योगी वह ही है, जिसका सबसे मेल है, ज्ञानी वह ही है, जिसका ज्ञान भेद रहित है और सबको धीरता वीरता, उदारता, गंभीरता, समता एकता सिखलाता है।

पाठक! सबकी जान अपनी सी जान समझो सच्ची मीठी वाणी बोलो, पूरा तोलो, दीनोंको दान

अजामिल ।

विकर्षतोऽन्तर्हृदयाद्दासीपतिमजामिलम् । यमप्रेष्यान्विष्णुदूता वारयामासुरोजसा ॥

Lakshmibilas Press, Calcutta

दो, बड़ों को सन्मान दो, बांट कर खाओ, अपना ही पेट मत पालो, पराया धन धूल समान, परस्त्री माता समान जानो ! क्रोध कभी मत करो, क्रोध से अपनी और दूसरे की दोनों की हानि होती है। क्रोध से चित्त जलता रहता है। साधु महात्माओं का संग करो, कुसंग से बचो, सत्शास्त्र पढो, भगवन और भगवद्भक्तों के गुणों का गान करो, उनकी रहनि सहनि सीखो। महात्माओं के संग से ही सबका कल्याण होता है। जय विजय भगवान् के द्वारपाल होने पर भी भगवद्भक्त सनकादि की कृपा न होने से तीन जन्म तक राक्षस कुल में जन्म लेते रहे थे और प्रहाद दैत्य कुल में होने पर भी नारद जी के उपदेश से परम भगवद्भक्त हो गये। महात्माओं का संग ही कल्याण का कारण है। तन से, मन से वाणी से पवित्र रहो, यह ही परम तप है। अपनी बड़ाई दूसरे की निन्दा कभी मत करो, अपनी बड़ाई करने से अपनी हिंसा होती है, दूसरे की निंदा करने से दूसरे की हिंसा होती है। परनिंदा महापाप है। अपने इष्ट देव को सबसे उत्तम देव समझो, दूसरे के इष्ट की निन्दा कभी मत करो, कर्म भक्ति, ज्ञान, योग जो कुछ करते हो अपने पक्ष पर दृढ रहो पराये पक्ष का खंडन कभी मत करो, ऐसा करने से अपना पराया किसी का लाभ नहीं है, दोनों की हानि ही होती है। सब पंथ भगवत् की प्राप्ति कराने वाले है, जो जिस पंथ पर आरूढ है, उसके लिये वह ही ठीक है। दूसरे का दिल दुखाना अच्छा नहीं है, कुछ देने को पास न हो तो भले ही मत दो, किसी से कड़वे वचन मत बोलो। अस्त्र शस्त्र का घाव समय पर पुर जाता है वचनों का घाव कभी नहीं पुरता ! कर्जा कभी मतलो जो लेलिया हो चुका दो, आगे न लेने की प्रतिज्ञा करो ! बिना दाम की कोई चीज मत लो, मुफ्त कोई चीज नहीं मिलती, यह ईश्वर का अटल नियम है, यह बात पश्चिमी दुनियां से सीखो ! जो कोई किसी का कुछ लेता है, अवश्य देना पड़ता है। चाहे रोकर दो चाहे हंसकर दो देना अवश्य पड़ता है। परमेश्वर के यहां भूल नहीं है, पानी का पानी दूध का दूध है। हम और आप दो दिनके लिये आये हैं, यहां से जाना अवश्य पड़ेगा, फिर बुराई पल्ले क्यों बांधनी ! देखो, माके पेट मेंसे सब रोते हुये आते हैं। जब कोई यहां जन्मता है, तब रोता ही जन्मता है, उसका जन्म सुनकर घरके बाहरके प्रसन्न होते हैं, समझते हैं कि यह हमारा कुछ न कुछ उपकार करेगा। यदि तुम उनका उपकार न करो और अपना ही स्वार्थ साधो तो कितनी बुराई की बात है। हमारा यहां आना व्यर्थ नहीं है, कुछ न कुछ करने के लिये ही आना हुआ है। तब क्या करना चाहिये, अपने सामर्थ्यानुसार सबका हित करना ही कर्तव्य है ! न कुछ लाये थे, न कुछ ले जाओगे, हाथ मूंदे आये थे, हाथ पसारे जाओगे यहां के पदार्थ यहां ही रह जायंगे ! तब सदाके लिये अपयश क्यों मोल लेना चाहिये ? समय निकल जाता है, बात बनी रहती है, धर्मात्माओं की कीर्ति गाई जाती है, अधर्मियों की अपकीर्ति होती है। वेद, पुराण, इतिहास सब इस बात के साक्षी हैं, इसलिये अपकीर्ति से बचो और कीर्ति छोड़ कर यहां से जाओ रोते आये थे, हंसते हुये जाओ। सब शिष्ट पुरुष सनातन से ऐसा ही करते आये हैं, उनका ही अनुकरण हमको करना चाहिये। सुपुत्र से माता का यश होता है, कुपुत्र अपनी और माता पिता की अपकीर्ति का कारण होता है। सबसे मेल करो, यह ही भक्ति है,

यह ही ज्ञान है, सब संत महात्माओं का यह ही मत है। जीता वह ही है, जो औरों के लिये जीता है, शेष सब मृतक ही हैं, मृतक मत बनो, जी जाओ! जी जाओ, जी जाओ! चिरंजीव हो, अमर हो, सदा सुखी हो! एवमस्तु।

दोः-अपना सा जी जानकर सबसे कीजे प्यार
भोला! यह ही भक्ति है यही वेद का सार

'भक्ति' की दूसरी वर्ष गांठ के उत्सव में भगवद्भक्तों की प्रसन्नतार्थ भगवत् चरणों में साष्टांग समर्पण!

भक्तों के लक्षण।

[ले० श्री० महात्मा राम]

ज्ञानशक्ति समारूढस्तत्त्वमाला विभूषितः
भक्तिमुक्तिप्रदाता च तस्मै श्रीगुरवेनमः॥

न शक्ति में आरूढ, तत्व वस्तुको माला रूप से धारण करने वाले, भक्ति तथा मुक्तिके प्रदाताश्रीसद्गुरु को नमस्कार करके; परम कल्याण स्वरूप, भगवन्नाम के स्मरण मात्र से परम श्रेय की आशा रखने वाले, भगवद्भक्तों को आनन्द प्रद तथा सर्व जनों को हितकारी, अनन्त पुण्यों से प्राप्त होने योग्य भगवद्भक्तों के धर्म का सामान्यतया कथन करते हुवे आधुनिक भक्त जनोंकी सेवा में प्रेमकी वृद्धि के लिये समर्पण करते हैं।

एक दिन देवर्षि नारदजी वसुदेव जी के गृह पर आए, तब वसुदेवजी ने अत्यन्त भक्ति पूर्वक उत्तम आसन पर बैठा कर पूजा अर्चन तथा नमस्कार करके पूछा:-

हे भगवन्! जैसे हरि भगवान् की प्राप्ति का द्वार आप सरीखे महान पुरुष हैं ऐसा दूसरा कोई साधन नहीं है। आपका आगमन हम सब देहधारी जीवों के कल्याणार्थ ही है। यद्यपि हम आपके आने ही से कृतार्थ होगए हैं, तथापि जिन धर्मों से भगवान् प्रसन्न होते हैं उन धर्मों को हम आप से पूछते हैं।

जब इस प्रकार वसुदेव जीने देवर्षि नारदजी से पूछा तो नारदजी भगवान के गुणों को स्मरण करके अत्यंत प्रसन्न होकर कहने लगे कि, हे वसुदेव जी! तुमने यह बहुत उत्तम प्रश्न किया क्योंकि, सबके चित्त को शुद्ध करने वाला यह उत्तम धर्म आपने पूछा है। यह धर्म श्रद्धा भक्ति पूर्वक आदर से सुना हुवा तथा स्मरण किया हुवा और ध्यान किया हुवा

समस्त पापों को नाश कर देता है। हे वसुदेवजी! महाराज ऋषभ देव के नो पुत्र थे। वह परमार्थ के उपदेश करने वाले और सदा आत्म ज्ञानके अभ्यास में तत्पर रहते थे। एक बार वह सब इस विश्व को भगवद् रूप से देखते हुवे अप्रतिहत गतिसे आसक्ति रहित सर्व जगह विचरते हुवे दैवयोग से ऋषियों से सुशोभित, उदार चित्त अजनाभ राजा जनक के यज्ञमें आये। सूर्य के समान तेजस्वी परम भक्त इन ऋषियों को देखकर यजमान अग्नि आदि ब्राह्मण खड़े होगये। इसके उपरांत राजा जनक उनको नारायण परायण जान अति प्रसन्न हो आसन देकर यथा योग्य पूजा करने लगे। पश्चात् स्तुति प्रार्थना करके जनक उन ऋषियों से बोले:-

दुर्लभो मानुषो देहो देहीनां क्षणभंगुरः।
तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुंठं प्रियदर्शनम्॥

मुझे यह दुलर्भ मनुष्य देह मिली है, इसलिये मैं बड़ा भाग्यवाला हूं, क्योंकि देह धारियों को मनुष्य देह ही दुर्लभ है। वह भी क्षण भंगुर है। उसमें भी भगवान् के प्रिय भक्तों का दर्शन तो अत्यन्त दुलर्भ है। इसलिये हे निष्पाप! मैं आपसे पूछता हूं कि ससार में सबसे उत्तम कल्याण का साधन क्या है? क्योंकि, इस संसार में आधे क्षण मात्र का सत्संग भी मनुष्यों को बड़ी निधि है, इस कारण यदि आप मुझे सुनने का अधिकारी जानों तो मेरे प्रति भक्तों के धर्मोंको कहो जिन धर्मों से प्रसन्न होकर भगवान् भक्तों को अपना सर्वस्व तक देदेते हैं। नारदजी कहते हैं कि हे वसुदेव! राजा जनक ने जब इस प्रकार पूछा तब सब जनक की स्तुति करने लगे। राजा जनक द्वारा पूछे हुए भक्तों के धर्म तथा परमेश्वर की भक्ति के विषय में प्रश्न को सुनकर योगीश्वर इस प्रकार कहने लगे:-

हरि भगवान् के चरणारविन्द की उपासना ही सर्व प्रकार के भय दूर करती है। जिस उपासना के करने से देहादिक अनात्म पदार्थों के बन्धन से छूट जाता है। शरीर, वाणी, मन, बुद्धि और अहंकार से माने हुये शरीर सम्बधी जो कुछ कर्म करने में आवें वह सब परमेश्वर के अर्पण करने से सब क्रियायें नारायण सम्बन्धी धर्म रूप हो जाती हैं। परमेश्वर से विमुख पुरुष को ईश्वर की माया से भगवत् स्वरूप का ज्ञान नहीं होता किंतु, मैं देह हूं ऐसा अभिमान होता है। तब दूसरे के अभिनिवेश से भय होता है क्योंकि, माया से मोहित पुरुष को भय होता है। इससे गुरु, देवता तथा ईश्वर को बुद्धिमान पुरुष भक्ति सहित माने। यद्यपि यह प्रपंच सब ब्रह्म रूप ही है, दूसरा कोई नहीं तथापि अविद्या से द्वैत भासता है। जैसे शयन करने वाले पुरुष को स्वप्न और मनोरथ दीखते हैं इसी कारण संकल्प के कर्ता मनको बुद्धिमान् पुरुष रोकके निश्चल भक्ति से भजन करे तो अभय पद को प्राप्त होता है। यथा:-

शृण्वन्सुभद्राणि रथांगपाणे-
र्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके।
गीतानि नामानि तदर्थकानि,
गायन्विलज्जो विचरेदसंगः॥

जगदीश के शुभ जन्म कर्मों को और दिव्य जन्म कर्मों से हुवे नाम तथा नामों के अर्थ को और श्रीमुख से कही हुई भगवद्गीता को गायन करता

हुवा लोक लाज को छोड़कर असंग होकर जहां मन चाहे वहां विचरे अर्थात् भगवान के प्रेम में निमग्न होकर भगवच्चरित्रों को गाता फिरे।

एवं व्रतः स्वप्रियनाम कीर्त्या-
जातानुरागोद्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति गाय-
त्युन्माद वन्नृत्यति लोक बाह्यः॥

इस प्रकार भजन करने से प्रेम लक्षणा भक्ति योग को प्राप्त होने से उसकी संसार से न्यारी ही गति होजाती है। जिसका ऐसा आचरण है वह भगवान वासुदेव के नाम कीर्तन से अनुराग बढ़ने और चित्त के अति कोमल होनेसे भगवान को भी वशमें कर लेते हैं। तब उनकी यह दशा होती है कि कभी तो भगवान को अपने वशमें जानकर हंसते हैं और कभी इतना समय व्यर्थ गया ऐसा जानकर रोते हैं, कभी अति उत्कण्ठा से पुकारते हैं तथा कभी भगवान के प्रेमानन्द में निमग्न होकर उच्च स्वर से भगवन्नाम के गीत गाते हैं, और कभी नाचने लगते हैं। इस प्रकार लोक मर्य्यादा को त्याग कर उन्मत्त के समान अलौकिक चेष्टा करते हैं।

आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, तथा सूर्यादि ज्योति और सर्व दिशायें वृक्ष, नदी आदि प्राणी मात्र को हरि का ही शरीर जान कर अनन्य चित्त होकर प्रणाम करता है, और यदि कोई कहे कि अनेक जन्मों में प्राप्त होने योग्य, जो योगी को भी दुर्लभ है वह धर्म, नाम के कीर्तन मात्र से एक ही जन्म में क्योंकर हो सकेगा, तो उसका यह उत्तर है कि, भगवान में प्रेम लक्षणा भक्ति तथा भगवद् स्वरूप का अनुभव ज्ञान और गृहादिकों में वैराग्य, यह तीनों भगवान के भजन करने वाले पुरुष को एक ही काल में होते हैं। जैसे भोजन करने वाले पुरुष के लिये तृप्ति और शरीर की पुष्टी तथ क्षुधा की निवृत्ति यह तीनों एकही काल में होती हैं।

इत्यच्युतांघ्रिं भजतोऽनु वृत्त्या-
भक्तिर्विरक्तिर्भगवत्प्रबोधः।
भवंति वै भागवतस्य राजं-
स्ततः परांशांति मुपैति साक्षात्॥

इस प्रकार निरंतर भगवान का भजन करने वाले पुरुष को भगवान के अनुग्रह से प्रेम लक्षणा भक्ति तथा भगवान के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान और संसार से वैराग्य होकर परम शांति को प्राप्त होता है। इसके अनन्तर राजा जनक बोले, कि हे भगवन्! मनुष्यों में भागवतों का स्वभाव, आचरण भाषण चिन्ह कैसे होते हैं जिस से वह भगवान के प्रिय होते हैं। आप यह सब वृत्तांत मुझे कृपा करके कहो। इस प्रकार जनक के प्रार्थना करने पर योगीश्वर कहने लगे, कि हे जनक! जो सर्वभूत प्राणी मात्र में भगवत् भाव को देखता है तथा अपने आत्मा में भगवत् भावको देखता है और जो भगवान में इन प्राणियों को तथा अपने आपको देखता है वह उत्तम भक्त कहा जाता है। जो अपने को ईश्वर के आधीन जानकर ईश्वर में प्रेम करता है, भगवान के भक्तों से मित्रता करता है तथा मूर्खों पर दया करता है, दुराचारियों की उपेक्षा करता है वह मध्यम भक्त कहाता है। जो भेद बुद्धि से केवल प्रतिमा में ही श्रद्धा रखता है, अन्य जीवों में तथा भक्तों में जिसकी श्रद्धा नहीं है वह प्राकृत भक्त कहाता है।

गृहीत्वापीन्द्रियैर्यान्यो न द्वेष्टि न हृष्यति
विष्णोर्मायामिदं पश्यन्स वै भागवतो तमः

जो इंद्रियों के विषयों को गृहण करता हुवा भी अनिष्ट की प्राप्ति में द्वेष नहीं करता तथा इष्ट पदार्थ की प्राप्ति में हर्ष नहीं करता, सब दृश्यमान् जगत् को विष्णु भगवान् की माया है ऐसा जानता है, वह भक्त उत्तम कहा जाता है। देह, इंद्रियां, प्राण, मन, बुद्धि के सांसारिक धर्म हैं, जन्म, मरण, क्षुधा, पिपासा, भय, चिंता आदि से जो मोहित नहीं होता और निरंतर भगवान् हरि का स्मरण करता है, वह भक्तों में श्रेष्ट है। जिसके मन में काम, कर्म और वासना कभी उत्पन्न नहीं होते, वासुदेव भगवान् के ध्यान में जिसका चित्त निमग्न है वह भक्तों में उत्तम भक्त है।

न यस्य जन्म कर्मभ्यां न वर्णाश्रम जातिभिः
सज्जतेऽस्मिन्नहं भावो देहे वै स हरेः प्रियः

जिसको जाति, वर्ण, आश्रम कुल, जन्म, कर्म तथा शरीर के धर्मों में अभिमानादि दोष कभी नहीं होते वह भगवान् का अति प्यारा भक्त है। जिसके चित्त में अपनी पराई बुद्धि नहीं है जो सबको सम दृष्टि से देखता है, शांत स्वभाववान्, त्रिलोकी के राज्य को भी तिरस्कार कर देता है, जो देवतों की भी अति दुर्लभ है। ऐसे भगवान् वासुदेव के चरण कमलों से जिसका चित्त एक क्षण मात्र को भी चलायमान् नहीं होता वह ही भगवान् का प्रिय भक्त है।

केवल नाम मात्र के लेते ही समस्त पापों के समूहों का नाश करने वाले साक्षात् वासुदेव भगवान् को जो हृदय से एक क्षण मात्र भी नहीं बिसरता वह ही उत्तम भक्त है।

हाय दद्दा !

(ले० श्री० पं० गुरुदेवशरण जी मथुरा)

प्रेम कुंवर एक सात वर्ष का बालक था। इस का जन्म सम्वत् १९२२ विक्रमी में ग्राम आनन्दपुर जो गंगा यमुनाके मध्य भूभाग अन्तर्द्वीप में हुवा था। उसके पिता का नाम हरिप्रपन्न, माता का नाम सुभद्रा था। उस के पिता एक बहुत सीधे सादे ग्रामीण मनुष्य थे, किंतु धन धान्य सम्पन्न व आनन्दपुर ग्राम के आठ आने के हिस्से के जमींदार थे। उन्होंने अपने मकान के समीप ही एक देवालय बनवा रक्खा था। इसमें भगवान् कृष्ण की मूर्ति स्थापित की थी। भगवान् कृष्ण में उनकी अनन्य भक्ति थी तथा इतना प्रेम था कि कभी २ कीर्तन करते समय एकान्त में नाचने भी लगजाते, कथा श्रवण करते समय तथा सत्संग में प्रायः उनका शरीर विह्वल हो जाता, नेत्रों से अश्रुधारा का प्रवाह होने लगता। वे साधारण विद्वान् होने पर भी बड़ी २ गूढ शंकाओंका संक्षेपमें इतनी जल्दी समाधान कर देते थे कि अच्छे २ विद्वान् उन की विलक्षण बुद्धि का लोहा मान जाते थे। एक दिन उस मन्दिर में जहां बहुधा अतिथि आया करते थे एक बड़े विद्वान् पंडित जिनका काम ही शास्त्रार्थ व उपदेश करना था पधारे। पंडित जी विद्वान् तो अवश्य थे परन्तु सार-ग्राही न थे। कोई बात कैसी ही प्रमाणिक व युक्ति युक्त क्यों न हो उस के खण्डन करने ही में वे

पांडित्य समझते थे। नाम मात्र के लिये कि कोई उनको नास्तिक न कह सके अपना मत वैदिक कह देते थे। पंडित जी को अपनी चातुर्यता का अभिमान कुछ कम न था। नियमानुसार पंडित जी का भी अतिथि सत्कार हुवा, भोजन विश्राम से निश्चिन्त होकर पंडित जी व हरिप्रपन्न में निम्न लिखित वार्तालाप हुई:-

पण्डित जी क्या आप परमात्मा को निर्विकार, सर्व शक्तिमान, सर्व व्यापक, सर्वज्ञ, अज, निराकार, न्यायकारी मान कर उस की उपासना करते हैं वा अन्य प्रकार से।

हरिप्रपन्न पण्डित जी! मैंने अधिक विद्या नहीं पढ़ी। अतएव आप के प्रश्नों का उत्तर देने में मुझे कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। यदि आपकी इच्छा हो तो समीप ही ग्राम मधुकरपुर में एक धुरंधर विद्वान, सकल शास्त्र पारङ्गत, वेदान्त शिरोमणि, दंडी स्वामी श्री १०८ श्री निर्विकल्पानन्दजी महाराज विराजते हैं। दूर दूर से लोग उनके दर्शनों को आते हैं। उनके दर्शन मात्र से कैसा ही विपदग्रस्त क्यों न हो आनन्द मग्न हो जाता है। वे मेरे सद्गुरु भी हैं, अधिक वाद विवाद नहीं करते, अल्प शब्दों में ही शंका समाधान कर देते हैं। मैं आपको उन महात्मा के दर्शन करा दूंगा। वे आपके प्रश्नोंका उत्तर भी बड़ी योग्यता तथा प्रमाण सहित दे सकेंगे।

पंडित जी-अवश्य चलेंगे परन्तु हम आप सभी को सत्य का ग्रहण असत्य का त्याग करने के लिये पुरुषार्थ करना चाहिये। आपने अपने जीवन का लक्ष्य क्या बनाया है, परमात्मा की उपासना करने में आपके क्या भाव हैं यही मेरे पूछने का आपसे तात्पर्य है।

हरिप्रपन्न (किंचित् समय तक ध्यान में रहने के पीछे] मैं तो एक कृष्ण ही को जानता हूं उनकी सांवरी सूरत, माधुरी मूरत ने मेरा मन मोहि लिया है, मेरे चित्त को चुरालिया है, जब से गोपियों का माखन चुराया तभी से उनको चोरी की बान पड़ गई है, मुझ से कुछ न पाया तो चित्त ही चुरालिया। मनतो एक ही होता है, वह मन उनकी मन्द मुसकान से जालगा। अब कैसे करूं! मेरी दशा कीट भृंग सी हो रही है। जहां देखता हूं कृष्ण को ही देखता हूं। सारा जगत् कृष्णमयी है। अब यदि परमात्मा की पूछते हैं तो वह कृष्ण ही होगा उनके सिवा दूसरा कोई नहीं।

पण्डित जी सुनो जिसका कुछ आकार है वह परमात्मा नहीं हो सकता। कारण कि यदि परमात्मा का कुछ आकार मानोगे तो जन्म मरणादि विकार भी उसमें अनिवार्य होंगे। यह असंगत है अतएव सत्य की खोज कीजिये।

हरिप्रपन्न मेरे कृष्ण का आकार साधारण जन्म मरण शील न समझिये। यह वह आकार है जिसका प्रतिबिम्ब यह समस्त ब्रह्माण्ड है। बिना आकार के यह मनुष्य देह किसकी परछाहीं कहोगे? यह सम्पूर्ण सृष्टि किसके आभास से भास रही है? क्या कोई कारखाना है, जहां से यह सब बनकर आते हैं? नहीं नहीं यह वह कृष्ण है जिसके नेत्र सूर्य चांद होकर प्रकाशते हैं। जैसा कर्ता का रूप हो वैसा ही उसके कृत्य का रूप भी होना चाहिये। यदि परमात्मा निराकार है तो उसकी सृष्टि भी निराकार होनी चाहिये।

पण्डित जी-प्रत्यक्ष में तो यह ही देखा जाता है कि कृष्ण का जन्म मरण सृष्टिके नियमानुकूल हुवा

फिर उनमें क्या विशेषता है ?

हरिप्रपन्न क्या उनकी समस्त जीवन घटनायें साधारण मनुष्य ही के समान थीं? उनमें विशेषता कुछ भी नहीं थी ?

पंडित जी-नहीं नहीं बड़ी विशेषतायें थीं। वे महान पुरुष थे उनकी बराबरी साधारण जन कैसे कर सकते हैं।

हरिप्रपन्न-बस यही मेरा अभिप्राय है। मुझे उनको परमात्मा कहने की आवश्यकता नहीं। मेरा तो उनसे स्वाभाविक प्रेम है। मैं उनको पुरुषों में उत्तम मानता हूं। उन्होंने इच्छामय शरीर धारण किया, अर्थात् अपनी इच्छा से रूपधरा, अपने बनाये हुए सृष्टि नियम को सत्य करने के लिये जन्म मरण का स्वांगरचा, आपको द्वैत बुद्धि अर्थात् भेद भाव जब तक बना रहैगा आप कृष्ण को नहीं प्राप्त हो सकते।

पण्डित जी-वो क्या आप अहं ब्रह्मास्मि वाले सिद्धान्त के मानने वाले हैं।

हरिप्रपन्न नहीं मैं तो सेवक हूं। कृष्ण मेरा स्वामी, सखा, प्यारा मित्र है। मुझे तो प्रेम में ही आनन्द आता है। मेरी यही प्रार्थना है कि यही प्रेम भाव मेरे हृदय में सदैव बना रहै, परन्तु क्या करूं अत्यन्त प्रेम का परिणाम ही यह होता है कि प्रेमी प्रियतम एक रूप हो जाते हैं। इसके प्रमाण संसार में भरे पड़े हैं कहने की आवश्यकता नहीं।

पण्डितजी धन्य है। मैं अधिक आपको कष्ट न दूंगा रात अधिक हो गई विश्राम कीजिये प्रातःकाल आपके गुरु दण्डी स्वामी के पास चलूंगा।

हरिप्रपन्न और पंडित जी दोनों विश्राम करते हैं। प्रातःकाल शौचादिसेनिवृत्तहो नित्य नियम करने के पश्चात् पंडित जी व हरिप्रपन्न दोनों श्री दण्डी स्वामी जी की ओर प्रस्थान करते हैं। आधे घंटे पीछे वहां पहुंचकर महात्माजी को देखते ही पंडित जी बहुत प्रसन्न हुये। उनका शान्त स्वरूप देखने ही योग्य था। महात्मा के तेज ने पंडितजी के अभिमान को बहुत कुछ नीचा दिखाया। पंडितजी व हरिप्रपन्न दण्डवत् प्रणाम कर महात्माजी के समीप ही बैठगये। महात्माजी के पास जन समुदाय की न्यूनता किसी समय भी कम नहीं रहती थी। अनेकप्रकार के मनोरथ मनमें धारण करके लोग वहां जाते थे। महात्मा जी थोड़े ही शब्दोंमें उनके हृदय की बात का उत्तर दे देते थे। अतएव बहुत दूर २ के लोग वहां जाते थे। पंडित जी को देख कर महात्मा हंसते हुये बोले-

स्वामी जी-तुम जानते हो कि पाप का मूल व जन्म मरण का कारण क्या है ?

पंडितजी-सत्य को छोड़ना असत्य को ग्रहण करन तथा वेद विरुद्ध कपोल कल्पित मतों का मानना यही पाप का मूल है। जन्म मरण का कारण कर्मों का फल है।

स्वामी जी-तुमने पूर्ण रीति से सत्य का ग्रहण कर लिया ?

पण्डित जी-मैंने तो ग्रहण कर लिया, परन्तु मनुष्य को चाहिये कि अपनी उन्नति ही पर सन्तोष न करे वरंच दूसरों की उन्नति भी करावे। अतएव मैं अब भ्रमण करता हूं और दूसरों को उपदेश करता फिरता हूं।

स्वामी जी-तुम नित्य प्रति अपने कामों की डायरी लिखते हो ?

पण्डित जी-मैं नित्य अपनी डायरी ठीक २ जो जो काम करता हूं लिखता हूं। मुझ से कोई भूल हो जाती है तो उसको भी स्पष्ट लिखने में आना कानी

नहीं करता।

स्वामीजी तुम सहारनपुर विधवाश्रम के मैनेजर भी तो थे ना ?

पण्डित जी—जी हां।

स्वामी जी वहां जब तुम थे डायरी ठीक २ लिखते थे ?

स्वामीजी के इस प्रकार पूछने पर पंडितजी न जाने क्यों लज्जित से होकर सिर नीचा कर लिया। कुछ स्पष्ट उत्तर न देकर "हूं" कह कर रह गये। स्वामी जी और लोगों की ओर मुंह फेर कर अन्य किसी व्यक्ति से वार्तालाप करने लगे। पंडित जी ऐसे अनेक पापाचरण करते हुये भी दबने वाले न थे। अपने को पक्के सदाचारी कहने में नहीं हिचकते थे। परन्तु यह उन महात्माजी के आत्मबल ही का तेज था जो यह दो ग्यारह हो गये। हरिप्रपन्न जी भी महात्मा की आज्ञा लेकर वहांसे चले आये। पाठक गण! अब हम मुख्य कथा की ओर आते हैं। हरि प्रपन्न का एक मात्र पुत्र प्रेम कुंवर अभी ७ वर्ष का बालक था, अपने पिता के साथ २ वह भी मन्दिर में जाया करता था, भजन कीर्तन ठाकुर सेवा इत्यादि देखने सुनने में उसको भी बड़ा प्रेम था। भगवान् कृष्ण की मूर्ति को वह जड़ मूर्ति न समझकर यही जानता कि ये मेरे बड़े भाई हैं। जैसे मैं खाता पीता हूं उसी प्रकार यह भी खाते पीते हैं। यही भावना उसके हृदय में दृढ़ थी बालकों के साथ खेलते हुये यदि कोई उसे सताता तो तुरन्त कह देता कि, मैं अपने बड़े भाई से कह कर पिटवाऊंगा। उसके माता पिता भी उसे ऐसा ही निश्चय कराने में सहायक थे। प्रेम कुंवर एक धनवान् का पुत्र था। उसके हाथों में सोने के कड़े, कंठ में माला, कानों में कुण्डल, आदि आभूषण बहु मूल्य थे। एक दिन वह आभूषणों से सुसज्जित अपने ननिहाल जो सेमरैया ग्राम जिला फतेहपुर में था एक रथ पर बैठ कर जारहा था। साथ में एक नाई और एक रथवान के सिवा और कोई न था। १५ कोस जाने के पीछे दिन छिप गया। रात अंधेरी थी भादों की कारी घटायें आकाश को अच्छादित कर रही थीं। हां बीच २ में दामिनी की चमक अलबत्ता अंधकार के साम्राज्यमें उपद्रव मचा देती थी। वह ग्राम समीप ही था जहां वे रात्रि में ठहरने वाले थे यकाएक डाकुओं के एक दल ने जिसमें पांच व्यक्ति दृष्टि आते थे शस्त्र लिये रथ को घेर लिया और एक ही प्रहार से उन्होंने रथवान को मार कर गिरा दिया। बेचारा नाई बड़ा स्वामी भक्त था। प्रेमकुंवर की रक्षा करने के लिये वह तड़प रहा था। उस ने डाकुओं से हाथ जोड़कर विनय की, कि आप सब आभूषण ले लीजिये किन्तु बालक पर दया कीजिये। यह प्रार्थना कर ही रहा था कि डाकुओं ने दो लट्ठ उसके भी मारे जिससे वह चेतना शून्य होकर गिर गया। प्रेमकुंवर भय के मारे कांपने लगा। वह बड़ी करुणा पूर्ण रोती हुई वाणी से "हाय दद्दा ! हाय दद्दा ! ! कह कर पुकारा। एक बार पुकारने पर कोई उत्तर न मिला। दूसरी बार भी नहीं, तीसरी बार पुकारने के लिये ज्योंही उसने मुंह खोला कि डाकुओं ने उसका कण्ठ पकड़ लिया। आधा ही स्वर उस के मुख से निकल पाया था कि समीप ही एक परम मनोहर श्यामवर्ण बालक आता हुवा दृष्टि गोचर हुवा। उस ने डाकुओं को मार भगाया। इस बालक को देखते ही प्रेमकुंवर पहिचान गया कि, यही मेरा 'दद्दा' है परन्तु इतनी जल्दी यहां कैसे आगया ? वह अपने दद्दा के गले लिपट कर बहुत रोया। और

कहने लगा प्यारे ! आज तू न आता तो मेरी क्या दशा होती ? 'दद्दा' ने प्रेमकुंवर के सिरपर हाथ फेरा। नाई रथवान दोनों को सचेत कर उस ग्राम तक जहां वे ठहरने वाले थे पहुंचा दिया। प्रेमकुंवर ने तो यह समझा था कि 'दद्दा' मेरे पास सोरहा है। परन्तु प्रातः-काल जब सोकर उठा तो 'दद्दा' को न देख उसका। वह पुकारने लगा जब कुछ पता न लगा तो घर लौटने की घड़ियां गिनकर दिन व्यतीत करने लगा। नाई व रथवान ने यह रहस्य नहीं जाना वे यही समझे कि किसी मनुष्य ने आकर हमारी रक्षा की थी। कुछ दिन वहां रहने के पश्चात् प्रेमकुंवर अपने घर को लौट आया आते ही दौड़ कर मन्दिर में घुसकर ठाकुरजी की मूर्ति से लिपट गया और रो कर कहने लगा 'दद्दा' तू उस दिन हम को न बचाता तो आज हम घर लौट कर न आते। हम को ननिहाल पहुंचा कर तू कब यहां आया। हम कुछ भी न जान सके। प्रेमकुंवर के पिता हरिप्रपन्न तथा कई लोग यह अद्भुत बात सुनकर बड़े विस्मित हुये और पूछने लगे कि क्या बात है ? तब प्रेम ने सारी कथा कह सुनाई। यह सुन कर सब लोग प्रेमकुंवर, नाई व रथवान के भाग्य की प्रशंसा करने लगे जिन्होंने प्रत्यक्ष भगवान् कृष्ण के दर्शन पाये। हरिप्रपन्न प्रेम में विह्वल होकर सर्वदा ध्यान में मग्न रहते प्रेमकुंवर कुछ दिन पीछे प्रौढ़ होकर अपने पिता से भी अधिक धर्मात्मा परोपकारी तथा भगवान् कृष्ण के अनन्य भक्त हुवे।

श्रीरामकृष्ण परमहंस।

[ले० श्री० जयदेव जी डालमियां चिड़ावा।]

बङ्गाल प्रान्त में हुगली जिले के अंतर्गत जहानाबाद तालुका में कामारपुर नामक ग्राम है। यहां खुदीराम चट्टोपाध्याय नाम के एक बड़े ही सुशील स्वभाव, सरल चित्त, धर्मनिष्ठ, भगवत् भक्त ब्राह्मण रहा करते थे। ये नाम जप के बड़े ही प्रेमी थे। ग्राम के लोगों में इन का अच्छा मान था। इनकी पत्नी चद्रमणि देवी भी अपने पति के आचरणानुसार सद्गुण सम्पन्न और दयालु स्वभावा थी। परदुःखकातर इतनी थी कि आप भूखे रह कर भी दूसरे क्षुधातुर गरीबों को भोजन दिया करती। ब्राह्मण दम्पति के रामकुमार और रामेश्वर नामक दो पुत्र थे। कहा जाता है कि दो पुत्र उत्पन्न होने के उपरान्त खुदीराम जी गया यात्रा के लिये गये थे वहां भगवान श्रीगदाधर जी ने स्वप्न में प्रकट हो कर इनको कहा कि तुम्हारे घर में मेरा

तेज प्रकट होगा। इस के बाद ही ई० सं० १८३३ में २० वीं फरवरी के दिन इन के तीसरा पुत्र रत्न हुवा जिसका नाम इन्होंने स्वप्न की बात याद करके गदाधर ही रखा। लेकिन कुटुम्ब के दूसरे मनुष्यों को यह नाम नहीं रुचा और इसी लिये इनका दूसरा नाम रामकृष्ण रखा गया।

बाल्यावस्था और अध्ययन।

बाल्यावस्थामें ये बड़े ही दुबले लेकिन उज्वल, गौरवर्ण और सर्व प्रियथे। इनको खेलने कूदने का बड़ा शौकथा। पांच वर्ष की अवस्था में इनको ग्राम की पाठशाला में बैठाया गया, परन्तु इनका पढ़ने में किंचित् भी मन नहीं लगता। सर्वदा खेलमें ही ध्यान रहता था। खेल में भी और बालकों जैसे खेल इनको अच्छे नहीं लगते। ये तो सर्वदा पुराणों की सुनी हुई बात को लीलारूपमें अनुकरण किया करते इनकी स्मरण शक्ति इतनी प्रबल थी कि भगवान् सम्बंधी कोई भी बार्ता या भजन एक बार सुनने से ही इन्हें याद रह जाता। इनको चित्रण का बड़ा शौक था। देवताओं के चित्र बनाया करते और मट्टीकी देवताओं की मूर्तियां भी बड़ी सुन्दर बनाते। गया यात्रा का मार्ग इनके ग्राममें से ही होकर जाता था इस कारण से आने जाने वाले संन्त यात्री इनके ग्राम की धर्मशाला में ही ठहरा करते थे। रामकृष्णजी भी खेलते खेलते साधुवों के पास जा बैठते और उनकी भगवान संबधी चर्चा बड़े ध्यान से सुनते। एक दिन साधुवों की तरह लंगोटी डाल कर अपनी माता के पास जाकर बोले "देखो! मैं कैसा सुन्दर बाबाजी बन गया हूं। पुत्रके स्वभाव प्रिय बचन सुन कर माता तथा जेष्ठ भ्राता रामकुमार हंसने लगे। कौन जानता था कि यह अंकुर एक दिन बड़ा भारी पेड़ बन कर संसार दावानल से तप्त जीवोंका आश्रय दाता होगा। अस्तु बारह वर्ष की उम्र तक ये ऐसे ही खेलते रहे। यद्यपि इनके पिता और ज्येष्ठ भ्राताने इनके पढ़ानेकी बहुत चेष्टाकी तो भी इन्होंने थोड़ाही अध्ययन किया। हां पुराण वाचकों से रामायण महाभारत आदि ग्रथों के श्रवण मात्र से अपनी स्मरण शक्ति का अच्छा परिचय दिया जो उनके उपदेश पढ़ने से पता लगता है।

विवाह और जीवन परिवर्तन।

पन्द्रह सोलह वर्ष की अवस्था में जयरामवाटी नामक ग्राम के निवासी रामचन्द्र मुख्योपाध्याय की आठ वर्ष की कन्या श्रीमती शारदामणि देवी से इन का विवाह हुवा। विवाह के उपरान्त, दक्षिणेश्वर के मंदिर में चले आये जहां इनके ज्येष्ठ भ्राता रामकुमारजी पुजारी थे। यहां आकर कालीदेवी और राधाकृष्ण की पूजा में ही निमग्न रहने लगे। पुजारी होने के बाद ये बड़े विचित्र ढंगसे पूजा किया करते। कभी तो सुगंधित पुष्पों से शृंगार करते, कभी चरणों में कमल तथा बिल्वपत्र अर्पण करके अपने इष्ट देवकी शोभा देख कर बड़े प्रसन्न होते। कभी अश्रुधारा बरसाते बरसाते प्रार्थना करते और कहते "मां! मेरे ऊपर दया कर, मां मैं शास्त्र, मन्त्र आदि कुछ भी नहीं जानता। मेरे ऊपर दया कर, मां! तू ने रामप्रसाद के ऊपर दया की थी मेरे ऊपर भी दया कर। मैं पण्डित नहीं हूं, मां मुझे अष्ट सिद्धियें नहीं चाहियें केवल एक बार तेरा दर्शपात चाहिये, मां! शीघ्र दर्शन दे तेरे बिना प्राण जाते हैं मां"! इसी तरह नित्य भाव मग्न हो प्रार्थना करते २ विरह वेदना

बढ़ती गई। यहां तक कि एक दिन मां! मां!! करते करते मूर्छित होकर गिर पड़े और नयनों को अश्रु-धारा से माता वसुन्धरा को सींचने लगे। लोग उठा कर अन्यत्र ले गये। दूसरे दिन सवेरे तक इनको चेत नहीं हुवा। अचेतनावस्था में सिवाय मां! मां!! के और कुछ भी मुंह से नहीं निकलता था। इसी अचेतनावस्था में ही मलमूत्र का भी त्याग होगया और इनको पता भी नहीं लगा। यह अवस्था दिन पर दिन बढ़ती गई। अब बिना माता के रहना इनके लिये अत्यन्त कठिन हो गया। जैसे जल से विलग होते ही मछली प्राण धारण नहीं कर सकती ऐसी अवस्था हो गई। फिर क्या था माता को बालक के प्रेम रज्जू में बन्धकर आना ही पड़ा। अपने इष्टके दर्शन से जो आनन्द हुवा वह वर्णनातीत है। इस को तो वही भाग्यवान् जन जानते हैं जिन्होंने कभी इसका अनुभव किया हो। जिन आंखों ने उस रूप को देखा उस का वर्णन करने में वाणी या लेखनी असमर्थ है। धन्य है भक्त की दृढ़ भावना और भक्ति को जिसने पत्थर की मूर्ति को भी चैतन्य मूर्ति बना दिया। यही प्रेम का तत्व है, यही प्रेम की सीमा है। पाठकगण! इन अपढ़ महापुरुष के लिये इतनी जल्दी ईश्वरके साक्षात्कार का आश्चर्य न करें। ईश्वर साक्षात्कार के लिये सिवाय अनन्य, अहेतुक प्रेम के और किसी साधनकी आवश्यकता नहीं है।

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥

यद्यपि इन में दैवी संपति के सब ही गुण थे तो भी अवगुणों को सदा अपने अन्दर खोज किया करते। माता से सर्वदा प्रार्थना किया करते कि, "मां! मेरे हृदय से अहंकार का नाश करके उस जगह तू विराजमान हो जा। मां! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चाण्डाल, मोची सब मेरे से श्रेष्ठ हैं, मैं नीचातिनीच हूं"। सिर्फ औरों की तरह प्रार्थना ही नहीं करते लेकिन इन सब बातों को आचरण में रखते थे। किसी के द्वारा की हुई निन्दास्तुति की तरफ ध्यान भी नहीं देते थे। बहुत से मनुष्य इनके कार्यों को बुरा बतला कर इनकी बड़ी टीका टिप्पणी करते थे तो भी ये वैसे ही अविचल अपने कार्य में मग्न रहते।

अकिंचिनता और समान भाव।

इनका सुवर्ण तथा मट्टी में, सुगंधित पुष्प तथा विष्टा में, अपने पराये में, मान अपमान में, निन्दा स्तुति में, शत्रु मित्र में, हर्ष शोक में सब में समान भाव था। संसार की सब स्त्रियों में मातृभाव रखते थे।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्ण सुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः ॥
तुल्य निंदास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येनकेनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥
ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥

कई घटनाओं से पता लगता है कि उपर्युक्त सब गुण उनमें विद्यमान थे। परमहंसजी एक समय एक हाथ में सुवासित पुष्प तथा दूसरे हाथ में अपनी विष्टा लेकर मन की परीक्षा ले रहे थे। यह देख कर किसी एक मनुष्य ने कहा कि अपनी विष्टा से तो किसीको भी घृणा नहीं, अपनी विष्टाको तो सभी छूते हैं, दूसरे की विष्टा छूवो तो मालूम हो। परमहंस जी को यह बात जच गई और गंगा किनारे जहां लोग शौचके लिये जाया करते थे, जाकर विष्टा हाथ में लेकर मन से पूछने लगे कि इस फूलमें और विष्टा में क्या अन्तर है। तदनन्तर इन्होंने रसना से विष्टा को स्पर्श भी किया और इन्हें इससे किसी भी प्रकार की घृणा न हुई। इस घटना से लोगों में बड़ी अशांति फैली। तरह तरह की चर्चाएं होने लगी। लेकिन परमहंसजी को इससे क्या! यह तो इन सबके परे पहुंच चुके थे। उनके लिये जैसी ही निंदा वैसी ही स्तुति।

कलकत्ते के एक मथुरा बाबू नाम के गृहस्थ ने एकबार परमहंस जी की निःस्पृहता की परीक्षा लेनेका विचार किया और लगभग डेढ हजार रुपये की कीमत का एक दुशाला लाकर उनके ऊपर ओढ़ा दिया। इसको देख कर परमहंस जी विचार करने लगे और कहने लगे कि, हे मन! ये शाल सिवाय जीवों के रोमोंके और क्या है? इसको आग में डाला जाय तो बड़ी दुर्गंध निकले। इसके ओढ़ने से रजोगुण की प्रवृत्ति होती है और किसी साधारण मनुष्य के सामने अहंकार उत्पन्न होता है। ऐसे विचार कर उन्होंने उस दुशाले को मट्टी में फेंक दिया और उस पर थूकने लगे। इस दृश्य को देख कर मथुरा बाबू तो दंग रह गये और उनके मन का यह अभिमान जाता रहा कि रामकृष्ण जी को मैं अपने धन से वश में कर लूंगा। इसी तरह लक्ष्मीनारायण नाम के कुछ पढ़े लिखे एक मारवाड़ी धनी गृहस्थ परमहंस जी के पास एक बार आये और परमहंस जी के बिछोने की चद्दर फटी हुई देख कर दूसरी चद्दर सेवा में भेंट करने की इच्छा दर्शाई। इसपर परमहंस जी बोले कि अभी यह काम लायक है पीछे मंदिर के स्वामी दूसरी आपही दे देंगे। यह बात इनको नहीं जची और बोले कि आप ऐसे महात्मा साधु को दूसरों की उपेक्षा करनी पड़े यह ठीक नहीं। मैं आपके लिए दस हजार रुपये का प्रोमिसरी नोट खरीद दूंगा जिसके तीस चालीस रुपये ब्याज से आपका खर्च चलता रहेगा। इस बात को सुनकर परमहंस जी को बड़ा दुःख हुवा और बनावटी क्रोध से बोले कि तुम परमार्थ के मार्ग से भ्रष्ट करने वाले अर्थ के लालच में मुझे फंसाने की चेष्टा करते हो! धिक्कार है। परमहंस जी की ऐसी दृढ़ता देखकर लक्ष्मीनारायणजी दिङ्मूढ हो गये।

ब्रह्मचर्य और कठिन परीक्षा।

यह दिन रात प्रेम में उन्मत्त से रहते थे। इनकी ऐसी प्रेमोन्माद की दशा देखकर इनके शुभेच्छुकोंने कितने ही अच्छे अच्छे वैद्यों को दिखलाया, लेकिन बिचारे भव रोग से ग्रसित इन वैद्यों के पास प्रेमोन्माद की दवा कहां से आवे! अतएव इनकी औषधियों से कोई लाभ न हुवा और उत्तरोत्तर पागलपन बढ़ने लगा। किसी किसी वैद्यने तो इनके वायु रोग बतलाया और उसका इलाज बताया स्त्री संसर्ग। लेकिन इनकी तो अवस्था विवाह होने के उपरान्त ही बदल गई थी। इन्होंने आजीवन कभी भी अपनी

स्वामी रामकृष्णजी परमहंस

स्वामी विवेकानन्दजी

Bhakti Press Rewari.

विवाहिता पत्नी से भी संसर्ग नहीं किया। कुटुम्बी लोग कई सुंदर स्त्रियों को पूर्ण शृंगार करके एकान्त में इनके पास भेजने लगे। लेकिन यहां तो ढंग ही और था। इनके लिये तो संसार भर की स्त्री मात्र काली का ही रूप थीं। फल यह हुवा कि वे स्त्रियां निराश ही लौट आतीं। स्त्री को देखते ही ये मां मां!! बोल कर चिल्लाने लगते। एक दिन कलकत्ते के प्रसिद्ध वैद्यराज गंगाप्रसाद जी परमहंस जी को देखने गये और उनकी अच्छी तरह परीक्षा करके उनके स्नेहियों से बोले तुम लोग भ्रम में क्यों पड़े हुये हो इनको वायु आयु का कोई रोग नहीं है इनके लक्षण तो प्रेमोन्मादी योगी के से हैं।

एक समय की बात है कि मथुरा बाबू इनकी परीक्षा करने के लिये एकदिन इनको अपने साथ मछुआ बाजार में एक वेश्या के घर पर लेगये जहां इन्होंने पहिले से ही रुपये देकर, सब इंतजाम ठीक कर कई नग्न सुसज्जित स्त्रियों को बैठा रखा था और परमहंस जी सिर्फ एक लंगोटी धारण किये हुये थे। परमहंस जी को उस कमरे में छोड़ कर मथुरा बाबू चले आये। बड़ा विकट परीक्षा का समय था। एक तरफ एकांत में शृंगार किये हुये नग्न स्त्रियें और दूसरी ओर पूर्ण युवा बालब्रह्मचारी हमारे रामकृष्ण जी महाराज। ऐसी स्थिति से बचकर निकल जाना बड़ा ही कठिन कार्य है। लेकिन परमहंस जी सब में माता काली का प्रत्यक्ष रूप निहार रहे थे। यद्यपि स्त्रियों ने अपने हाव भाव और चेष्टा में कोई कसर नहीं रक्खी परन्तु रामकृष्ण जी उनको देखते ही मां ! ब्रह्ममयी मां. आनन्दमयी मां चिल्लाते हुये आंख बन्द कर माता कालीका ध्यान करते हुये बैठ गये। और प्रेमाश्रुधारा से पृथ्वी भिगोने लगे। फिर क्या था, झट उनकी अवस्था समाधिस्थ होगई। इस समाधिस्थ अवस्था को देख कर वे स्त्रियें घबराई और डरके मारे क्षमा याचना करती हुई कोई उनके हवा करने लगी और कोई हाथ जोड़े सामने खड़ी रहीं। रामकृष्ण जी महाराज माता काली की कृपा से वहां से भी साफ बेदाग निकल आये। ऐसी हालत देखकर मथुरा बाबू बड़े लज्जित हुये और परमहंस जी के बड़े श्रद्धालु और प्रेमी भक्त बन कर दास की तरह रहने लगे।

एक समय इनके आश्रम में एक धनी बाबू की भगवती नाम की दासी आकर दूर से प्रणाम करके इनकी आज्ञा लेकर बैठ गई। परमहंस जी उसको बहुत पहिले से पहिचानते थे। यह अपनी युवा अवस्था में आचरण भ्रष्ट थी, लेकिन तो भी परम दयालु, पतित पावन रामकृष्ण जी ने इसको सत्संग का लाभ उठाने से वंचित नहीं किया। वे उससे पूछने लगे कि अब तो तूने बहुत द्रव्य इकट्ठा कर लिया है कुछ दान, धर्म, साधु, वैष्णवों को भोजन आदि करवाती हो न ? वृन्दावन आदि तीर्थ यात्रा करती हो न ? यह बात सुनकर उसने संकोच पूर्वक उत्तर दिया कि मैं अपने मुंह से क्या कहूं हां एक घाट बनवाया है उसपर मेरा नाम "श्रीमती भगवती दासी खुदवाया है। इसके बाद उसने हिम्मत करके परमहंसजी के चरण छूकर प्रणाम किया। स्त्री के हाथ स्पर्श होते ही रामकृष्णजी को बिच्छु के डंक जैसी वेदना होने लगी और गोविंद २ चिल्लाते हुये दौड़कर कौने में जहां गंगाजल रक्खा था वहां उस अंग को गंगाजल से धोया।

× × × × ×

नाना प्रकार के भावों की साधना।

एक समय रामकृष्णजी के मनमें भगवान् श्रीरामचन्द्र जी की भक्ति उदय हुई। हनुमानजी को रामचन्द्रजी का परम प्रेमी और अहेतुक भक्त समझ कर उन्हीं के भाव से साधना करने की इच्छा हुई। वे कपड़े की पूंछ बांधकर वृक्षपर चढ़जाते और रघुवीर रघुवीर की रटन लगाया करते। ऐसे भाव में हो जाते मानो उनको श्रीरामचन्द्र जी का साक्षात्कार होरहा है। बंदरों के प्रिय फल जामन, केले वगैरह बड़े शौक से खाते। संक्षेपतया ऐसे ही कार्य करने लगे जैसे कपि किया करते हैं। इसी समय एक सन्यासी से इनकी भेंट हुई उसने इनको "राम" मन्त्र का उपदेश दिया। रामकृष्णजी ने उस सन्यासी से एक पीतल की मूर्ति भी ली जिसका नाम "रामलला" रक्खा और वात्सल्य भाव से उसकी सेवा करने लगे। भाव में इतने मग्न हो जाते कि जड़ मूर्ति से साक्षात् चेतन का सा व्यवहार करके बाल भावसे उपासना करते। यह मूर्ति अब भी दक्षिणेश्वर के मंदिर में विद्यमान बतलायी जाती है।

इसके बाद उनके मनमें सखा भाव से उपासना करने की आई। तब वे सुदामा आदि का अनुकरण कर श्रीकृष्ण के साथ सखा भाव से उपासना करने लगे। भावमें मग्न होकर श्रीकृष्ण का शृंगार करते और पैरों में नूपुर बांधते समय नूपुर की ध्वनि सुनकर आनन्द से नाचते नाचते मस्त हो जाते। प्रेम में गद्गद् होकर अश्रु बहाने लगते और स्नेह पूर्वक सखा की तरह भगवानसे वार्तालाप करते।

जब कभी सखी भाव से उपासना करने की मनमें आई तो श्रीमती राधा के भाव में स्त्री वेश करलिया। इसी तरह प्रायः सभी भावों की उपासना इन्होंने की। इस प्रकार सब उपासना करने के पश्चात् यह तत्व निकाला कि सभी धर्मों और मतों का लक्ष्य तो एक ही है लेकिन सिर्फ साधन प्रणाली में भेद है।

इन्होंने सिख धर्म की भी दीक्षा ली थी। और एक समय गोविंददास नाम के कैवर्त जाति के मुसलमान धर्म के प्रमाण से भजन करने वाले मनुष्य से मुसलमान धर्म की भी दीक्षा ली थी और लगातार तीन दिन तक उसी प्रमाण से धर्माचरण किया। जिस उद्देश्य से हिन्दु साधना करते हैं उसी उद्देश्यसे मुसलमान भी करते हैं। मुहम्मद साहब के उपदेश "काफिरों का संहार करने से स्वर्ग में अप्सराओं के साथ वास मिलता है" का अर्थ अपने शरीर के अन्दर रहने वाले विजातीय षड्रिपु (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर) का नाश करना ही है। इसी तरह एक जगह ईसा की तस्वीर देख कर उस पर मोहित होगये और तीन दिन तक ईसाके भावमें भी साधना की। इस बीच में कभी भी काली, कृष्ण, राम या शिव का नाम तक स्मरण न किया। ईसा का एक चित्र अपने घरमें भी रक्खा जो अभी तक दक्षिणेश्वरमें बताया जाता है। इस चित्र का भाव ऐसा है कि ईसा से समुद्र किनारे किसी वृद्धने पूछा ईश्वर कब मिलेंगे? इस पर ईसा ने उस मनुष्य का हाथ पकड़ कर जरा गहरे पानी में लेजाकर गोता लगवा दिया। बिचारा वृद्ध घबराया। तब ईसा ने पूछा कि कैसी स्थिति है। वृद्ध बोला प्राण जाते हैं। ईसाने उस वृद्ध से कहा कि जब उस प्रियतम के विरहमें इसी तरह प्राण जाने लगेंगे तभी वह मिलेगा।

× × × × ×

परमहंस जी के पास नवीन सभ्यता के अभिमानी कितनेही नास्तिक सत्संग के लिये आने लगे। वह इनके उपदेशामृत को पान कर भक्ति और प्रेम से गद्गद हो लज्जा छोड़कर नाचने लगते कितने ही विश्व विद्यालय के पढे लिखे सभ्य मनुष्यों ने इनके सत्संग से जीवन का अमूल्य लाभ प्राप्त किया। कितने ही तो संसार सुख को तिलांजली देकर सन्यासी हो गये। उनमें से मुख्य नरेन्द्रनाथ दत्त (पीछे से स्वामी विवेकानन्द) थे। यदि किसी ने एकवार भी परमहंस जी के संग का लाभ उठाया हो वह फिर कभी यदि कलकत्ते आता तो विना उनके दर्शन किये न लौटता। परमहंस जी उपदेश करते करते भाव मग्न हो कईवार समाधिस्थ हो जाया करते थे। कीर्तन के समय अथवा भजन सुनते ही अथवा देवमूर्ति को देखते ही प्रेम में इतने गद्गद हो जाते कि इनको शरीर की सुध भी नहीं रहती।

कलकत्ते के एक परमभक्त केशवचन्द्र परमहंस जी के पास आया करते और परमहंस जी स्वयं भी कईवार उनके घर जाया करते थे। पहिले लोग रामकृष्ण परमहंस जी को साधारण साधु समझते थे उनके ज्ञान भंडार का पता लोगों को पीछे केशव बाबू द्वारा मालूम हुवा था। जब केशव बाबू का अन्त समय नजदीक आया तब एक दिन रामकृष्ण जी बोले कि बाग में एक ही सुन्दर फूल खिला था लेकिन उसको तोड़ने के लिये उसका मालिक आरहा है। इसके बाद ही केशव बाबू के परमधाम गमन का समाचार इनको मिला जिससे इन्हें बड़ा कष्ट हुवा।

श्री रामकृष्ण जी परमहंस भक्तों से हरि चर्चा करते समय भी कभी २ भाव मग्न हो जाया करते उस समय शरीर अचल और आंखे स्थिर हो जाया करतीं तथा बाहर की सुध बुध भूल जाते। भगवन् प्रेम का भजन सुनकर तो उनकी आंखे प्रेम से डब डबा जाती। परमहंस जी के भक्त वर्ग में कितनी ही सती साध्वी गृहस्थ स्त्रियां तथा कितनी ही सन्यासिनी स्त्रियां भी थीं।

सत्संग के लिये स्त्रियों की आव जाव शुरु होने के पहिले ही इनकी पत्नी भी पति सेवा का लाभ लेने के लिये इनके पास आकर रहने लगी थी। एक समय रामकृष्णजी को समाधिस्थ देख कर उन्होंने पूछा कि मैं कौन हूं। परमहंस जी बोले तू मेरी आनन्द मयी माता है। मैं जानता हूं माता भगवती ही एक रूप से यहां स्थित है, दूसरे रूप से मंदिर में स्थित है और तीसरे रूप से मेरी सेवा कर रही है। यह सुन कर उनके नेत्रों में जल भर आया और आंसू बहने लगे। उस दिन से माताजी ने सब वासनाओं को त्याग कर केवल पति सेवा में चित्त लगाया।

एक समय रोग ग्रस्त अवस्था में एक प्रेमी ने रामकृष्ण जी से पूछा कि आप योगी होकर अपने शरीर की परवाह क्यों नहीं करते? इस पर परमहंस जी ने बड़े प्रेम से कहा "भाई मैं समझता था तुम बड़े समझदार हो। भला एक वार जब मैं अपना मन ईश्वर के अर्पण कर चुका तो क्या अब वह उससे वापिस लेलूं। अहा धन्य है! भक्तों की लीला भी बड़ी विचित्र है। दूसरे का दुःख नहीं देख सकते इसलिये दूसरों को तो क्लेश मुक्त कर देते हैं लेकिन आप सदा दुःख में ही रहना सुखकर समझते हैं।

रामकृष्ण जी सर्वदा अपने शिष्यों को यही उपदेश दिया करते कि अपने अवगुण कोने कोने में से खोज कर निकालो। दूसरों के अवगुण निकालने का व्यर्थ परिश्रम मत करो वक्तृता से कोई लाभ नहीं। कमल के खिलने की जरूरत है फिर भ्रमर तो आप से आप आजायंगे। कुए को जल के लिये किसी को बुलाना नहीं पड़ता प्यासा आप से आप खोज लेता है।

इस तरह मानव लीला को समाप्त कर श्री रामकृष्णजी परमहंस इस असार संसार को छोड़कर ई० स० १८८६ में तारीख १६ अगस्त के दिन ५२ वर्ष की अवस्था में परमधाम को पधारे। कहते हैं कि अन्त समय में उनके गले में एक फोड़ा हो गया था जिससे गले के नीचे अन्न जल उतरना बन्द होगया भक्त लोगों ने बहुतेरी चिकित्सा भी कराई। ऐसी असह्य वेदना होते हुये भी परमहंसजी सर्वदा प्रफुल्लित रहा करते थे।

राम कृष्णजी के मुख्य शिष्य विवेकानन्द जी ने जगह जगह साधुओं का संग एकत्र कर "रामकृष्ण मिशन" नामके कई आश्रम खोले। जहां सन्यासी महात्मा रह कर जगत की सेवा करते हुये अपना परमार्थ साधन करने लगे। कलकत्ते के पास भागीरथ के उसपार बेलूड़ नामक ग्राम में रामकृष्ण मिशन आश्रम में परमहंस जी की अस्थि, पादुका, हस्ताक्षर आदि कई स्मृति चिन्ह पड़े हैं। वहां शिवरात्रि के बाद परमहंसजी का जन्मोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है।

गुरु कृपा से भगवद्दर्शन।

[ले० श्री० स्वामी रघुनाथ शर्मा नरेला]

विष्णो रराटमसि विष्णोः श्नप्त्रेस्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोसि। वैष्णवमसि विष्णवेत्वा॥

हे विष्णो! तुमही संसार के मस्तक हो, हे विष्णो! तुमही सब के ग्रहण करने वाले हो, हे विष्णो! तुमही सुखस्वरूप हो, तुमही वैष्णव हो, आपको मैं प्राप्त होजाऊं। यही प्रार्थना विष्णु भगवान् से अनन्य प्रेम द्वारा करनी चाहिये और अपना सर्वस्व विष्णु भगवान् को वेदानुसार अर्पण करदेना चाहिये।

आयुर्यज्ञेन कल्पताम्। चक्षुर्यज्ञेन कल्पताम् श्रोत्रंयज्ञेन कल्पताम्। वाग्यज्ञेनकल्पताम् ब्रह्मयज्ञेन कल्पताम्। ज्योतिर्यज्ञेनकल्पताम् स्वर्यज्ञेन कल्पताम्। यज्ञोयज्ञेनकल्पताम्॥ यज्ञो वै विष्णुः।

इस मन्त्र में यज्ञ विष्णु का नाम है। भावार्थ यह है कि विष्णु भगवान् के लिये आयु, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, मन, वाणी सहित अपने आप को अर्पण कर दो वेद रूपी धन ज्योति और अपना सर्वस्व परमात्मा के निमित्त समझो और विष्णु के लिये अपने आप को उसकी "प्रेम भक्ति" रूपी ज्ञानाग्नि में इस प्रकार डालदो जिस प्रकार अग्निमें आहुति देते हैं। पुनः आयुको विष्णु से, प्राणको विष्णुसे, चक्षुको विष्णु से, श्रोत्रको विष्णु से वाग् को विष्णु से, तथा मनको विष्णु से अभेद समझो उसको अपना आपा बार बार चिन्तन करो। वही वेद और वही स्वयं ज्योति सुख स्वरूप है। उस अपने जीवनाधार प्राणपति विष्णु के लिये अपने आपको दे दो, और उसकी इच्छाऽनुसार चलना आरम्भ कर दो वह स्वयं तुम्हारे पास ही आजावेंगे। जिस प्रकार एक साधारण पुरुष चक्रवर्ति सम्राट् के दर्शन करना चाहता था, वह सब लोगों से पूछने लगा कि कोई मुझको ऐसी विधि कथन करे कि जिसके द्वारा मैं महाराज के दर्शन करके कृतार्थ होऊं। परन्तु उसको कोई तो यह कहने लगा कि महाराज से तो महान पुरुष ही मिल सक्ते हैं तू नहीं मिल सक्ता और कोई कहता था कि भाई जब कभी महाराज पर्यटन करने को निकलें तब उनको देख लेना परन्तु तेरा देखना तब भी कठिन वरञ्च असम्भव है। यह श्रवण कर वह राजभक्त अत्यन्त व्याकुल चित्त से भगवान् से राजाके दर्शन करने की प्रार्थना करने लगा। इतने ही में एक सन्यासी महात्मा वहां आनिकले, और उससे बोले भक्त तू इतना व्याकुल क्यों है, वह बोला कि महाराज मैं आपकी शरण हूं आप जो कुछ आज्ञा करेंगे मैं उसको सच्ची प्रीति और दृढ़ विश्वास पूर्वक करूंगा। इतना श्रवण कर महात्मा यह अलापने लगे:-

एक भरोसा राम बल, एक आश विश्वास ।
स्वाति सलिल गुरु चरण है चातक तुलसीदास
उत्तम और चण्डाल घर जहां दीपक उजियार
तुलसी मते पतंग के सभी ज्योति इकसार ॥
नीच २ सब तर गये सन्त चरण लवलीन ।
जाति के अभिमान से डूबे बहुत कुलीन ॥ ३
सोना काई ना लगे लोहा घुण नहीं खाय ।
बुरा भला जो गुरु भक्त कबहु नरक नहीं जाय
मकरी उतरे तार से पुन गह चढ़त जो तार ।
जाको जासों मन रम्यो पहुंचत लगे न बार ॥

ऊपरके दोहे कहकर महात्मा बोले बच्चा यदि तेरे दर्शनकी सच्ची प्रीति है और वचन पर विश्वास है तो जो मैं कहता हूं सो तू कर। जो गुरु वचनको ही मानते हैं उनका सर्वकार्य मोक्ष पर्यन्त स्वतः सिद्धहोने लगता है। अब राजाके दुर्गपर जहां पर ऊंची पताका और शतघ्नी आदि चिह्न दृष्टि गोचर होते हैं वहां महाराजके दुर्गकी खाई खुद रही है और वहां बहुत से श्रमजीवि अर्थात् मजदूर काम कररहे हैं। तू भी उन में जाकर काम करने लग जा और नौकरी कुछ न लेना। सायं, प्रातः अत्यन्त श्रम करना। मध्यान्ह में भिक्षा से क्षुधा निवृत्ति कर लेना और चाहे कोई कुछ कहे वेतन कुछ न लेना अपना कर्तव्य (Duty) समझ राज भक्ति करना। यदि हमारे इस वचन के अनुसार तू करेगा तो महाराज तेरे दर्शन करने स्वयं आवेंगे। वह तुरंत महात्मा गुरुके वचन पर दृढ़ विश्वास कर श्रमजीवियों में जाकर श्रम करने लगा। काम करते २ जब सूर्यास्तका समय हुवा तब कर्मचारी प्रबन्धकर्ताके पास वेतन लेने

गये । (Contractor) ठेकेदार सब श्रमजीवियों को वेतन विभक्त करने लगा जब उसकी बारी आई तब ठेकेदार ने उससे कहा तैंने आज बहुत अच्छा कार्य किया है यह लो अपना वेतन। वह बोला कि मैं नौकरी कभी नहीं लेनेका चाहे प्राण भलेही निकल जांय, यही मेरे गुरुकी आज्ञा है। राजा की सेवा करना मेरा धर्म और कर्तव्य कर्म है। यह कह कर वह अपने घरको ओर चल दिया । प्रातः काल पुनः आकर अपना कार्य करने लगा दूसरे दिन भी उसको बहुतेरा कहा परन्तु उस ने कुछ भी वे नस्वीकार नहीं किया, कार्य सब से विशेष करता रहा। दिन प्रति दिन उसके निर्लोभ और निष्काम कर्म की महिमा सारे नगर के नर नारियों में होने लगी। राजसभा में भी एक कर्मचारी ने महाराज से कहा कि महाराज ! एक ऐसा पुरुष श्रमजीवियों में आकर नौकर हुआ है कि वह बिना वेतन लिये सबसे विशेष कार्य करता है और भिक्षा से अपना निर्वाह करता है। उस को दस बारह दिन व्यतीत हो चुके हैं और श्रम अधिष्ठाता उसको कह कर थैठ रहे परन्तु उसने कुछ भी वेतन न लेते हुये बार बार यही कहा कि राजाकी सेवा करना मेरा धर्म है। राजाने उसकी ऐसी राजभक्ति श्रवण कर तुरन्त ही कर्मचारियों को आज्ञा दे दी कि चलो हम भी उस पुरुष के दर्शन करें जो निष्काम हमारे निमित्त इतना श्रम करता है। निदान ! राजा राज्यमन्त्री, सर्वराज कर्मचारी तथा सभासदों सहित उस पुरुष के देखने के लिये आये । उनको चल कर आये हुए देख सब कर्मचारीहाथ जोड़ कर इतस्ततः भयभीत खड़े हो गए और शनैः २ कहने लगे कि महाराज ! आज तुम्हें देखने को आए हैं। इतने ही में महाराज पास आकर बोले हम तुम पर बड़े प्रसन्न हुए हैं तुम्हारी इच्छा हो सो मांगो हम देने को तत्पर हैं तब तो वह पुरुष अत्यन्त प्रसन्न होकर गुरु के चरणों में ध्यान लगाकर उनके वचन में निमग्न होकर गुरु का रूप होता हुआ प्रेम में विह्वल होकर बोला कि महाराज ! अब आपके दर्शन होगए । मुझे तो बहुत काल से दर्शन की अभिलाषा थी, बहुतेरा काम किया परन्तु अब तक निराश ही रहा। हे राजन ! जब तक मुझको सद्गुरु नहीं मिले थे तब तक ही निराशा रही थी। अब जिनकी कृपासे आपके दर्शन प्राप्त हुए हैं अबमैं उनही सद्गुरु की शरण को प्राप्त होकर बड़े महाराज अर्थात् विष्णु भगवान से मिलूंगा गुरु भक्ति के अतिरिक्त मुझे कुछ भी आवश्कता नहीं है। जिनके वचन को मानने से एक पक्ष के अन्तर्गत कहां तो मैं आपके दर्शन करना चाहता था और कहां आप मेरे जैसे अधम के दर्शन के लिये आए हो। आहा क्या ही सद्गुरु के वचनों का महत्व है।

मनने की गत कही न जाय ।
जो कहे पाछे पछताय ॥

गुरु के शब्द का जो विश्वास करता है उसकी अपार गति होती है।

गुरु को कीजे दण्डवत कोटि २ प्रणाम ।
कीट न जाने भृंगको गुरुकरले आप समान

इसी भाव को यह श्लोक कहता है।

सति सक्तो नरो याति सद्भावं ह्येकनिष्ठया
कीटको भ्रमरीं ध्यायन् भ्रमरत्वाय कल्पते

कबीरा हरि के रूठते गुरु के शरणे जाय।
कहैं कबीर गुरु रूठते हरि नहिं होत सहाय

गुरु मानुष कर जानते ते नर कहिये अंध
हांय दुखी संसार में आगे यमका फंद ॥

अतएव भगवत् प्राप्ति के लिये प्रथम सद्गुरु की शरण ही समुचित है। वही संसार सागर से पार करने के लिये कर्णधार है। उनही के चरण कमलों की कृपा से सब कठिनाइयां परम सुगम हो जाती हैं और भगवान् भी अति शीघ्र स्वयं प्राप्त हो जाते हैं। दृढ़ विश्वास से ही भगवान् के दर्शन होते हैं इसलिये सबको सद्गुरु में दृढ विश्वास रखना चाहिये।

कर्णधारं गुरुं प्राप्य तद्वाक्यप्लवदृढम्।
अभ्यासवासनाशक्त्या तरन्ति भवसागरम्

कर्णधार अर्थात् सद्गुरु की शरण को प्राप्त होकर उनके वचन रूपी दृढ नौका में बैठ कर पुनः स्मरण रूप अभ्यास तथा वासना क्षय रूपी बन्धनको काट कर भव सागर से पार होते हैं।

भक्ति का विकाश।

[ले० श्रीमती बदामोदेवी भगवद्भक्ति आश्रम]

मनुष्य ने अपने कल्याण के लिये जितने साधन अबतक खोज निकाले हैं उनमें सत्संग रूपी साधन या हरि कथा की चर्चा ही फूल के समान मनोहर, सुगन्धित और सुन्दर साधन है, क्योंकि इस से अनायास ही आनन्द की प्राप्ति और तृप्ति होती है। नाना प्रकार की साधनाओं से जितने भी प्रकार की सिद्धियों को मनुष्य प्राप्त कर सकता है उनमें भगवद्भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ सिद्धि है क्योंकि अन्य सिद्धियों में कोई तो मृत्युके साथ लय हो जाती है और कोई केवल परलोक में काम देती है। परन्तु भगवद्भक्ति, रूपी सिद्धि इस जीवनमें भी आनन्द प्रद और मृत्यु के पश्चात् भी कल्याणकारिणी होती है। इसलिये भगवद्भक्ति सब सिद्धियों का फल है। अतएव भगवद्भक्ति आनन्द मंगल के देने वाली मनोहर, सरल तथा हृदयद्रावक साधन, एवं सच्ची सिद्धि है। कहा भी है:-

भक्ति से ध्रुव पार उतर गये,
भक्ति से प्रह्लाद।
भक्ति से सब गोपियां तर गईं,
भक्ति रूप आधार ॥

एक बार नारदजी भगवान विष्णुजी के पास वैकुण्ठ में गये। अभिवादन के पश्चात् नारदजीने भगवान से पूछा कि महाराज! आप हमारे पथ प्रदर्शक हो आप जिधर चाहो उधर लेजा सकते हो। हमें भक्ति मार्ग पर चलने की इच्छा है, हमें भय है

कि हम अज्ञान वश मूर्खता न कर बैठें। इसीलिये भक्ति की आवश्यकता है जब हमको भक्ति मार्ग दिखलाई पड़ेगा तब हमारा भ्रम दूर होवेगा। मृत्यु से तभी तक मनुष्य डरते हैं। जबतक भक्तिरूपी अमृत नहीं प्राप्त होजाता। तुम अमृत के समुद्र हो तुम्हारी किंचित् भी दया मात्र से हम भक्ति को प्राप्त कर सकेंगे। और भक्ति का पालन करने के लिये हम इसकी याचना करते हैं। आप दयालु हो अतः हमारी अभिलाषा पूर्ण करो। नारदजी का प्रश्न सुन कर भगवान् बहुत प्रसन्न हुये और उन्होंने कहा ऋषिवर! आपने संसार के कल्याण की इच्छा से यह प्रश्न किया है, अतएव मैं आप से अपने मनकी बात बतलाता हूं। मुझे भी सब प्रकार की सिद्धियों से, सब साधनों अथवा पूजा पाठ, संध्योपासन अनशन व्रतादि से अनुपम भक्ति ही प्रिय है। जो पुरुष मन वचन तथा कर्म से इसका उचित रीति से पालन करते हैं वह निश्चय ही मुझको प्राप्त होजाते हैं। सत् पुरुषों का जन्म संसार में देश हित के लिये ही होता है। भगवद्गीता में भी कहा है।

यद्यदा चरति श्रेष्ठः तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करते हैं दूसरे लोग भी उनकी देखा देखी वैसा ही करते हैं। लोग उन्हीं के अनुसार चलने लगते हैं। भक्ति किस प्रकार और कैसे और किस की करनी चाहिये सो श्रवण करो। वैसे तो भक्ति कई प्रकार की वेद शास्त्रों में वर्णनकी गई है। मातृ भक्ति, पितृ भक्ति, आचार्य भक्ति, भ्रातृ भक्ति गो भक्ति और देश भक्ति आदि नाना प्रकार की भक्ति हैं तथापि भक्ति उसी की करनी चाहिये जिस भक्ति के करने से सर्वव्यापी परमात्मा की आज्ञा का पालन हो सके। हमारा कर्तव्य है कि उस निर्विकार जगद् रचयिता अन्तरयामी भगवान् की आज्ञा का पालन करने का पूर्ण रीति से यत्न करें।

कर्तव्यमेव कर्तव्यं, प्राणैः कण्ठगतैरपि।
अकर्तव्यं न कर्तव्यं, प्राणैः कण्ठगतैरपि॥

अपने कर्तव्य का पालन प्राणों के निकलने तक करना चाहिये। पर जिसे हम अकर्तव्य समझते हैं उसे प्राणों के जाने पर भी करना योग्य नहीं। कर्त्तव्य से ही दोषों का नाश होता है, कर्त्तव्य के पालन से ही सुख और शान्ति मिलती है और आत्मा का विकाश अथवा यों कहिये साक्षात्कार होता है। यद्यपि कर्त्तव्य ही सबका सार है, जितने भी निर्दोष कर्म हैं सबकी गणना कर्त्तव्य में ही समावेश हुई ज्ञात होती है। अपनी इच्छाओं को सांसारिक विषयों से हटाकर उस दयालु भगवान् की आज्ञा पालन करने का यत्न करें इसी का नाम भक्ति है। यह भक्ति कब हो सकती है, जब कि श्रद्धा विश्वास हो।

यो यच्छ्रद्धः स एव सः।

जो जैसी श्रद्धा रखता है वह वैसा ही बनता है।

विश्वासः फल दायकः।

विश्वास फल का देने वाला होता है अविश्वास के कारण हमने कितने ही लोगों को साधारण कार्य में असफल होते देखा है, और कठिन कार्य में अपने विश्वास के कारण लोग सफल हुये हैं। भक्ति के लिये भी दृढ़ विश्वास की आवश्यकता होतीहै। अतः जो कुछ करो पूर्ण प्रेम तथा विश्वास से करो,

और श्रद्धा बिना भगवद्भक्ति अथवा आज्ञा पालन करना कठिन है भगवद् आज्ञा ही भगवद्भक्ति है। इस पर एक दृष्टान्त है।

एक लड़का अपने माता पिता की आज्ञा को उल्लंघन करने लगा और धन को खोने लगा। माता पितादि से रुष्ट होकर घरमें जो कुछ रुपया पैसा था वह निकाल कर भाग आया। मार्ग में उसके मित्र मिले। उन्होंने उसको बहुत समझाया परन्तु उसके एक न लगी। थोड़े ही दिनों में उसकी बुरी दशा होगई अधिक भोग विलास अथवा ऐश आरामसे वह लड़का बड़ा रोगी होगया और यहां तक हुवा कि खाने और पहिनने को भी मोहताज होगया। अन्त में लाचार हो वह अपने पिता के पास गया और दीनता को प्राप्त होके अपने अपराधों की क्षमा मांगने लगा। पिता ने कहा मैंने तुझको निकाला नहीं था तूही निकलगया था। तू अपने कर्त्तव्य को स्मरण कर अथवा जान और उसका पालन कर। धन दौलत माल खजाने का तूही मालिक है। तू मेरा और मैं तेरा हूं। इसी प्रकार सामर्थ्यवान् पिता परमात्मा बड़ा दयालु है। परन्तु हम ही अज्ञान वश उसकी परवाह नहीं करते और उसे छोड़ देते हैं। तभी तो नाना प्रकार की वेदनायें अथवा दुःखों को सहते हैं। अतः हमको चाहिये जगद्पिता परमात्मा की आज्ञा पालन करने का यत्न करें और प्रार्थना करें कि "भगवन! हमारे अपराध क्षमा करो। हम आपकी सच्ची भक्ति करने के योग्य बनें। आपके आज्ञाकारी बनें"। ऐसा करने से हम ईश्वर के निर्दोष भक्त बन सकते हैं। भगवान ने गीता में भी कहा है:-

समोऽहं सर्व भूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्।

मैं सब भूतों में समान हूं मुझे किसी से स्नेह भी नहीं है परन्तु तबभी जो भक्ति पूर्वक मुझे भजता है वह मुझमें है और मैं उसमें हूं। पाठकगण! समझ गये होंगे किसकी भक्ति करनी चाहिये। अब भक्ति से क्या लाभ होता है सो विचार कीजिये। भक्ति के द्वारा तप होता है, भक्ति के द्वारा ही मधुर भाषी, सदाचारी, स्वार्थ त्यागी सत्यवादी बन सकता है, उदार बुद्धि, गुरु भक्त, परोपकारी, माता पिता का अनुयायी, ब्रह्मचारी न्यायी स्नेही, उत्साही कर्त्तव्य परायणी विद्या का प्रेमी, देश काल और बल का अनुभवी आत्मानात्मा को विचारने वाला और दानी हो सकता है और भी कहते हैं:-

अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।

अहिंसा के पालने से वैर भाव का त्याग होता है।

सत्य प्रतिष्ठायां क्रिया फलाश्रयत्वम्।

सत्य के पालन से सभी कार्य सिद्ध होते हैं।

अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्व रत्नोपस्थानम्।

सत्य के पालन से सब कछु स्वयं प्राप्त हो जाते हैं। अभिप्राय यह है कि इन सबका मूल भगवद्भक्ति ही है, और यह धर्म अर्थ काम और मोक्ष देने वाली है।

भगवद्भक्ति से भक्त भगवद् स्वरूप ही हो जाता है। अतः स्वार्थ और क्षणिक संसारी सुखों को छोड़ कर उस परम दयालु जगद्गुरु परमात्मा की भक्ति करें सबसे मेरी यही प्रार्थना है। शुद्ध हृदय से भगवान् की भक्ति करनी चाहिये। इसीसे आत्मा का विकाश हो सकता है। अब मैं एक भजन लिख कर लेख को समाप्त करती हूं।

भक्ति पदारथ नीको साधो,
भक्ति पदारथ नीको ॥टेक॥

याके आगे स्वर्गलोक पुनि,
ब्रह्म लोक हू फीको ॥
पुण्य भोग पडवे के कारण,
संशय जाय न जीको ॥
हरिजन सकल त्यागि निश दिन हू,
पावैं नाम अमीको ॥
धन्य धन्य ताके जीवन को,
डर नहीं काल बली को ॥

भक्ति मार्ग ।

[ले० श्री० भाई परमानन्द जी]

ऊ पर जाने के कई रास्ते हैं किसी में बड़े दिमाग की जरूरत है किसी में कठिन साधनों की, भक्ति का रास्ता ऐसा आसान और हृदयाकर्षक है कि मनुष्य हंसता खेलता आगे बढता जाता है। यह रास्ता प्रेम का है जिस में दुःख का निशान ही मिट जाता है। जिससे हम प्रेम करते हैं उसके लिये जितना दुःख उठायें उतनी ही खुशी की मात्रा बढती जाती है। प्रेम ऐसा पवित्र और इतना बलवान है कि दुःख को आनन्द में तबदील कर देता है। इस प्रेम से भक्ति का मार्ग आरम्भ होता है। सांसारिक प्रेमकी हालतमें हम देखते हैं कि प्रेम करने वाला हर स्थान और हर वस्तु में अपने प्यारे की तसवीर देखता है। रूहानी इश्क की हालत ही और है वहां तो सच्चा भक्त अपने माबूद के सिवाय और कुछ देखता ही नहीं। भगवान् की भक्ति ही ऐसा अमृत है जिससे सब दुःख दूर हो जाते हैं और मनुष्य परम पद को पा लेता है।

प्रार्थना

[ले० श्री० दुर्गाप्रसाद गुप्त 'हिंदी प्रभाकर']

बलदं, सकलं, मतिदं, विमलं ।
सवितारमजं विनयेन विभुम् ॥
अनघं भगवन्तमनादि गुरुं ।
प्रणिपत्य नमामि नमाम्यहकम् ॥

भावार्थ-जगदीश हमें बलवान् करो ।
गुण दो शुभ-बुद्धि प्रदान करो ॥
निज सेवक हे भगवान् ! करो ।
अघहारी ! सदा कल्याण करो ॥

भगवद्भक्तों पर भगवान् का अनुग्रह

[ले० श्रीपूज्य भोले बाबा जी]

यस्यापूर्व चरित्राणि काम दोषं हरन्तिवै:
निष्कामं तमहंवन्दे ह्यसंगं रामविग्रहम् ॥

छप्पय

विषय भोग क्षयरोग स्वास्थ्य सामर्थ्य घटावत
करें शान्ति निर्मूल शूल बहु विधि उपजावत ॥
देवे दुःख अनन्त अन्त रौरव भुगवावत ।
मारत बारंबार योनि नाना भटकावत ॥
जिन हरि भक्तन संगसे विषय तजत है शिष्टजन
भोला ! तिनकूं नमन कर दंभ रहित तनमन वचन

नारद और भगवान् का सम्वाद ।

दैत्यों का राजा रावण छाया रूप सीताजी को हर लेगया है। भक्त वत्सल भगवान उनके वियोग में विलाप करते हुये दंडकारण्य में खोज कर रहे हैं। गिरिगुफाओं, कन्दिराओं, में जा जा कर पर्वतों से, नदियों से, वृक्षों से, वन के पशुओं से, सीताजी का पता पूछते फिरते हैं। लक्ष्मण जी से अधीर होकर कहते हैं "भाई ! प्राण प्यारी वैदेही के वियोग से मेरा चित्त बहुत ही व्याकुल हो रहा है, खाना पीना कुछ नहीं सुहाता, नींद भी उड़गई है, यदि तुम सरीखा धीर वीर पुरुष धैर्य दाता, जितेन्द्रिय भ्राता मेरे साथ न होता तो न मालूम मेरा दुःख कितना बढ़ जाता ! तुम से धीर, वीर, जितेन्द्रिय, विषय विरक्त को देख कर ही मेरा चित्त धैर्य धारण कर रहा है ! नहीं तो मैं अत्यंत अधीर कायर हो जाता। वैराग्यवान तथा धीर पुरुषों का संग बहुत ही सुखदायी है, कामी कायर पुरुषों का साथ दुःखदायी है ! हे भाई ! तुम समान विरक्त पुरुष धन्य हैं, तुम्हारे भय से काम मेरे पास आने में संकोच करता है, फिर भी दूर रहने पर भी मुझे अधीर कर दिया है। कामियों की दुर्दशा दिखलाने वाले सामान्य मनुष्यों के समान भगवान् के ऐसे चरित्र देख कर नारद जी अपने शाप को याद करके मन में पश्चात्ताप करते हैं "ओ हो ! मैं कैसा हो गया था कि कामवश होकर भगवान् से सौन्दर्यता देने के लिये प्रार्थना की, फिर कामना पूर्ण न होने से क्रोध वश होकर सबके हित कर भगवान् को ही शाप दे दिया ! मेरे शाप के कारण भगवान् को कितना कष्ट हुआ है। नहीं ! यह भी भूल है, भगवान् को कष्ट नहीं होता ! भगवान् के चरित्र अपूर्व हैं ! ब्रह्मादिक देवता भी उनके चरित्र देखकर मोहित हो जाते हैं. इस समय भगवान् एकांत में हैं क्षमा कराने के बहाने उनके पास जाकर उनके वचनामृत सुन कर कुछ लाभ उठाना चाहिये." ऐसा विचार कर नारद भगवान् के पास आये और नम्रता पूर्वक इस प्रकार कहने लगे:-

नारदः हे दीन वत्सल भगवान् ! आपके चरित्र दुष्ट पुरुषों को मोहित करके संसार कूप में डालने वाले हैं और भगवद्भक्तों का मोह दूर करने वाले और उनको संसार समुद्र से तारने वाले हैं ! आपके चरित्र देख सुनकर आपके भक्त वैराग्य को प्राप्त होते हैं और आपसे विमुख दुष्ट पुरुष आपके चरित्रों को देखकर आप पर दोषारोपण करते हैं, उनका दोषारोपण उन्हीं को भवकूप में डालता है ! आप काम क्रोधादि से रहित सदा शुद्ध स्वरूप हैं फिर भी अज्ञानी लोग अपने काम क्रोधादि का आप में आरोपण करते हैं और अपने किये हुये दोषारोपण से आप ही बंधन को प्राप्त होते हैं हे भगवन् ! आपकी माया अपार है, क्षुद्र प्राणियों की तो गिनती ही क्या है ? बड़े २ शास्त्रज्ञ विद्वान भी आपकी माया से मोह जाते हैं, केवल आपके भक्त जिन्होंने स्त्री पुत्रादि सबसे मुख मोड़ कर मात्र आपके चरण कमल की शरण ली है वे ही आपकी माया को जानते हैं और माया से मुक्त होते हैं नहीं तो सब जन्म २ भटकते और कष्ट पाते हैं। हे प्रभो ! मैंने आपकी माया से मोहित होकर शाप दिया था, उसका मुझे बहुत पश्चात्ताप होता है आपको साधारण मनुष्यों के समान विलाप करते हुये देख कर फिर भी मोह होता है किंतु अब आप का मुझ पर पूर्ण अनुग्रह है इसलिये अब आपकी माया मोह नहीं सक्ती। भगवत् विमुख पुरुषों को ही माया मोहित कर सक्ती है, भगद्भक्तों से माया कोसों दूर रहता है। अथवा तीन काल में है ही नहीं ! हे भगवन् ! अब मैं आप से यह ही वर मांगता हूं कि आपके चरणों में मेरी अनन्य भक्ति हो, संसार का कोई भी पदार्थ मुझे अपनी तरफ खैंच न सके, आपका मेरे ऊपर पूर्ण अनुग्रह बना रहे, स्वप्न में भी मुझे अपने कर्तृत्व का अभिमान न हो ! भगवान् 'तथास्तु' कहते हैं और नारद जी फिर भगवान् से प्रश्न करते हैं।

नारदः-हे जनार्दन ! आपकी माया से मोहित होकर जब मुझे विवाह की कामना हो आई थी तब आपने मेरा मुख बंदर का बना कर मुझे विवाह करने से किस कारण रोका था ? इसका उत्तर मैं आपके श्रीमुख से सुनना चाहता हूं।

भगवानः-(प्रसन्न होते हुये) नारद ! तू मेरे स्वभाव को जानता है, मुझे अपने भक्त अत्यंत ही प्रिय हैं। जैसे माता बच्चे की रक्षा करती है ऐसे ही मैं अपने भक्तों की रक्षा करता हूं। काम क्रोध, और लोभ ये तीनों महाशत्रु हैं। ये ही तीनों जीव को नरक में ले जाने के द्वार हैं। इनके वश हुआ जीव नीच ऊंच नाना योनियों में भटकता है, अनेक कष्ट भोगता है और कभी भी शान्ति को प्राप्त नहीं होता। जो इन तीनों का त्याग करता है, वह ही संसार से मुक्त होता है। 'मैं और मेरा' इसका नाम संसार है, यह ही अज्ञान है, यह ही काम क्रोधादि अनेक अनर्थों का मूल है। जो काम क्रोध और लोभ का त्याग करता है, वह ही अज्ञान से मुक्त होकर सुखी होता है। संसार के भोग्य पदार्थों की कामना का नाम काम है, विषय भोगों का चिन्तवन करने से काम की उत्पत्ति होती है। जब काम के पूर्ण होने में किसी प्रकार का प्रतिबंध होता है तो काम के प्रतिबंध करने वाले पर क्रोध होता है। क्रोध के वश हुआ मनुष्य गुरु शास्त्र के उपदेश को भूल जाता है। भूल होने से मोह उत्पन्न होता है, मोह से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। बुद्धि ही जीव के अभ्युदय

श्रीभगवद्भक्तिआश्रम की कन्याशाला।

Bhakti Press Rewari

और मोह रूप श्रेय का कारण है। बुद्धि भ्रष्ट हो जाने से मनुष्य को अपने हिताहित का मार्ग नहीं सूझता मनुष्य अंधा हो जाता है और अपने पुरुषार्थ से भ्रष्ट होता है। पुरुषार्थ से भ्रष्ट हो जाने का नाम ही जीव का नष्ट होना है। स्वरूप से जीव का नाश नहीं होता, पुरुषार्थ से भ्रष्ट होना ही जीवका नाश है। इससे सिद्ध हुआ कि विषय भोगों की कामना ही अनर्थ का कारण है। सुगंध, वनिता (स्त्री) वस्त्र, गीत, ताम्बूल, भोजन, भूषण और वाहन ये आठ भोग कहलाते हैं, इनके भोगने से पुण्य क्षीण होता है और इनके न भोगने से पुण्य की वृद्धि होती है और अंतमें परम पुण्य रूप मेरे स्वरूप की प्राप्ति होती है। इन आठों में भी वनिता और भोजन दो सबसे प्रबल भोग हैं। जो शूर युद्धमें अस्त्र शस्त्रकी चोटसे भी नहीं हटता, वही स्त्री के सामने दीन और कायर हो जाता है। मिष्टान्न चटपटे भोजनों को देख कर अच्छे अच्छों की लार टपक पड़ती है। स्त्री अथवा भोजन स्वरूप से दुःख रूप नहीं हैं, उनकी कामना ही दुःख रूप है, इन दोनों में भी स्त्री की कामना अत्यंत प्रबल है। जैसे स्त्री की कामना पुरुष के लिये दुःख रूप है ऐसे ही पुरुष की कामना स्त्री के लिये अनर्थ का कारण है। स्त्री की इच्छा त्यागने से आठों भोगों का त्याग हो जाता है। हे नारद! इसी कारण तेरा शाप अंगीकार करके मैंने तुझे विवाह करने से रोका था। जैसे माता बच्चे को सर्प पकड़ने से रोकती है ऐसे ही मैं अपने भक्तोंको काम रूप सर्पके पास जाने नहीं देता। जैसे माता बच्चे को अग्नि छूने से रोकती है ऐसे ही मैं अपने भक्तों की क्रोध रूप अग्नि से रक्षा करता हूं। जैसे माता बच्चे को गड्ढे में गिरने नहीं देती ऐसे ही मैं अपने भक्तों को लोभ रूप गड्ढे में गिरने से रोकता हूं।

हे नारद! मनुष्य शरीर में वीर्य अमूल्य वस्तु है। वीर्य से ही मनुष्य का जीवन है, वीर्य ही शरीर में सार है, जो वीर्य की रक्षा करता है। वह काम वश नहीं होता, वह अमोघ सामर्थ्य वाला होता है, जो वीर्य की रक्षा नहीं करता, वह सामर्थ्य हीन होकर शीघ्र ही मृत्यु का ग्रास बनता है। जैसे कोल्हू में पेलने से गन्ना छूंछा हो जाता है ऐसे ही वीर्य नष्ट होने से मनुष्य सार रहित हो जाता है और सामर्थ्य जाते रहने से पुरुषार्थ हीन होजाता है, जो वीर्य की रक्षा करता है उसके बाल श्वेत नहीं होते, शरीर में झुर्रियां नहीं पड़ती, अंत तक उसकी कमर नहीं झुकती, नेत्रादि इंद्रियां शक्ति हीन नहीं होतीं, आयु भर आरोग्य रहता है और पूर्ण आयु जीता है। हे नारद! लौकिक आरोग्यता के सिवाय वीर्य से जो अपूर्व लाभ होते हैं, उनको कहता हूं, सुन, जितने उत्तम गुण हैं, सब वीर्य के आधीन हैं, अणिमादि सिद्धियां वीर्य के प्रभाव से प्राप्त होती हैं, जप तप सब वीर्य पर निर्भर हैं, वीर्य वाला धारणा, ध्यान, समाधि रूप से संयम करने के योग्य होता है, ब्रह्मविद्या की प्राप्ति में वीर्य ही मुख्य कारण है। जिसको जो सिद्धि प्राप्त हुई है अथवा होती है, वीर्य से ही हुई है और होती है। वीर्य से चिरंजीवी होते हैं। और वीर्य के बल से ही अंत में ब्रह्म स्वरूप होकर स्वाराज्य निर्वाण को प्राप्त होते हैं। विवेक, वैराग्य, शम, दम, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान, मुमुक्षुता, श्रवण मनन, निदिध्यासन, ये सब वीर्य के अधीन हैं। शांति, संतोष और परवैराग्य का हेतु भी वीर्य ही है। जो काम को जीत लेता है,

सर्वगुण संपन्न होता है, जितेन्द्रिय पुरुष चौदह विद्या का ज्ञाता और चौंसठ कलाओं में प्रवीण होता है। हे नारद! शरीराभिमानी को काम का जीतना अत्यंत कठिन है इसलिये गुरु शास्त्र के उपदेश द्वारा शम दमादि संपन्न होकर मुझ अशरीर परमात्मा की प्राप्ति का यत्न करना चाहिये। जब तक अशरीर रूप मुझ परमात्मा को जानने की योग्यता न हो तब तक मेरे सगुण स्वरूप के चरित्रों का श्रवण कथन और ध्यान करना चाहिए। वीतराग पुरुषों की संगति करनी चाहिए पूर्व में जो वीतराग पुरुष होगए हैं उनका अनुकरण करना चाहिए। ऐसे करने से धीरे २ कामनायें शिथिल होकर अंतमें काम की समूल निवृत्ति हो जाती है और जीव सदा के लिए सुखी हो जाता है।

नित्य और नैमित्तिक मेरे दो प्रकार के अवतार हैं, साधु, संत, महात्मा, ज्ञानी भक्त मेरे नित्य अवतार हैं, नैमित्तिक अवतार कभी २ किसी अपूर्व प्रसंग से हुआ करता है। जितने मेरे ज्ञानी भक्त हैं, उन पर मेरा पूर्ण अनुग्रह होता है, उन्हीं के द्वारा मैं सर्व साधारण भक्तों पर अनुग्रह किया करता हूं। भक्तों का अनुग्रह मेरा ही अनुग्रह है। जिन पर मेरे भक्त अनुग्रह करते हैं, उन पर मैं अवश्य अनुग्रह करता हूं। जैसे मेरे चरित्र अनन्त हैं, ऐसे ही मेरे भक्तों के चरित्र अनन्त है। जैसे मेरे चरित्र कहने सुनने से पापों का नाश होता है ऐसे ही मेरे भक्तों के चरित्र पापों का नाश करके जीव को संसार समुद्र से पार करते हैं। मेरे भक्तों के लक्षण असंख्य हैं, उनमें से दिग्दर्शन मात्र किंचित् मैं तुझे सुनाता हूं, ध्यान देकर सुनः-

हे नारद! मेरे भक्त चराचर विश्व को मेरा ही स्वरूप जानते हैं, मुझ से भिन्न कुछ नहीं मानते, सब में मुझे ही परिपूर्ण देखते हैं, मेरे समान ही सब की सेवा करते हैं, किसी से रागद्वेष नहीं करते सब में समान दृष्टि रखते हैं, शत्रु मित्र को समान जानते हैं, उनका निश्चय होता है कि वस्तुतः शत्रु मित्र कोई नहीं है, सर्वत्र ईश्वर एक रस व्यापक है। हमारे पूर्व में किए हुए पुण्यों से हमको मित्र की प्राप्ति होती है और पूर्व में किए हुऐ पापों से शत्रु की प्रप्ति होती है। वर्णाश्रम, जाति आदिक जो कुछ हमको प्राप्त हुआ है, सब पूर्व के कर्मों का फल है। शत्रु से मित्र की अपेक्षा हमको अधिक लाभ होता है क्योंकि मित्र तो हमारे गुण वर्णन करता है, उससे हमको कुछ लाभ नहीं है उलटी अभिमान की वृद्धि होने से हानि ही होती है और शत्रु हमारे दोषों को प्रकट करता है अपने दोष आपको मालूम नहीं पड़ते शत्रु द्वारा दोषों को जान कर हम उनकी निवृत्ति का उपाय कर सक्ते हैं। शत्रु की शत्रुता से हमारे पापों का भोग होकर पापों की निवृत्ति हो जाती है और हम शुद्ध हो जाते हैं। यदि शत्रु मिथ्या दोषारोपण करे तो उसमें हमारी कुछ हानि नहीं है क्योंकि शरीर तो दोषों का भंडार है ही, उसके दोष कथन करना ठीक ही है आत्मा कभी दोषी होता नहीं, आत्मा के दोष कथन करने से आत्मा का कुछ बिगड़ता नहीं, इसलिए हमारी किसी प्रकार भी हानि नहीं है। ऐसा जान कर मेरे भक्त सदा प्रसन्न रहते हैं, कभी खिन्न मन नहीं होते। मेरे भक्त आप दुःख सहलेते हैं दूसरे को तनसे, मनसे अथवा वाणी से पीड़ा नहीं देते! जैसे चन्दन का वृक्ष काटे जाने पर भी काटने वाले को सुगंध ही देता है जैसे फलदार वृक्ष ईंट पत्थर मारने पर भी फल ही देता है और जैसे हरा

वृक्ष शत्रु मित्र सबको छाया देता है, ऐसे ही मेरे भक्त अहित करने वालों का भी हित ही करते हैं, उनकी शत्रुता पर ध्यान नहीं देते, दोनों के साथ समान बर्ताव करते हैं। मेरे भक्त सदा मेरे स्वरूपानुसंधान में लगे रहते हैं, स्वप्न में भी विषय भोगों का चिन्तवन नहीं करते, वे जानते हैं कि मैं परमात्मा ही सुख रूप हूं और परमात्मा के सिवाय जो कुछ दिखाई दे रहा है, सब मृगतृष्णा के समान मिथ्या है। जैसे मृगतृष्णा के जल से प्यास बुझने की आशा नहीं है इसी प्रकार संसार के पदार्थों से तृप्ति की आशा करना निष्फल है। जैसे खांड के कुत्ते, बिल्ली, हाथी घोड़े आदि खिलौने खांड रूप ही हैं ऐसे ही अनेक प्रकार के आकार वाला जगत् भी ईश्वर रूप ही है। जो खिलौनों में खांड की दृष्टि रखता है, वह सुखी होता है, और जो मूर्ख खिलौनों की दृष्टि रखता है, वह दुःखी होता है। ऐसे ही जो सम्यग्दर्शी ससार में आधिष्ठान रूप ईश्वर की दृष्टि रखता है, उसके लिये संसार सुख रूप है और जो अल्पदर्शी नाम रूप को सत्य जान कर मैं मेरा मानता है, वह दुःखी होता है। हे नारद! मेरे भक्तों को शरीर में किंचित् भी आसक्ति नहीं होती और शरीर के संबंधियों में 'मैं मेरा' ऐसी बुद्धि नहीं होती। शरीर को मृतक मान कर वे शरीर में प्रेम नहीं करते जिनको शरीर में प्रेम नहीं उनको शरीर के संबंधियों में तो प्रेम हो ही कहां से? वे तो प्राणी मात्र पर समान प्रेम करते हैं। हे नारद! शरीर दुःख रूप है, दुःखों का भंडार है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीन प्रकार के शरीर हैं। उनमें स्थूल शरीर रुधिर मांसादि का समूह, आधि व्याधियों से युक्त प्रत्यक्ष ही दुःखों का भंडार है, शरीरधारी कोई भी दुःख से रहित नहीं है, यह बात सबको अनुभव सिद्ध है। सूक्ष्म शरीर काम, क्रोध, ईर्षा द्वेष आदि अनेक प्रकार के रोगों से संयुक्त है, इसमें सुख कहां से हो? कारण शरीर दोनों शरीरों का बीज अज्ञान रूप है इसलिये वह भी दुःख रूप ही है। इसलिये मेरे भक्त तीनों शरीरों की आसक्ति त्याग कर उन तीनों के साक्षी रूप मुझ परमात्मा की शरण लेकर अहर्निश मुझमें ही चित्तवृत्ति लगाये रहते हैं। इन तीनों शरीरों की प्राप्ति का कारण पुरुष के लिये स्त्री की इच्छा और स्त्री के लिये पुरुष की इच्छा है। जो इच्छा का त्याग करते हैं और मेरे परायण होते हैं वे तीनों शरीरों से मुक्त होकर मुझ आनन्द स्वरूप परमात्मा को प्राप्त होकर हमेशा के लिये सुखी होते हैं। मेरे भक्त भूल कर भी अपने कर्तव्य का अभिमान नहीं करते क्योंकि अभिमान ही सब क्लेशों का मूल है। मैं अपने भक्तों में कामना उत्पन्न नहीं होने देता और जहां किसी भक्त को किंचित् भी अभिमान हुआ, उसके अभिमान को उसी समय नष्ट कर देता हूं। इस प्रकार इच्छा और अभिमान का तोड़ देना, यह मेरे भक्तों पर मेरा निग्रह रूप परम अनुग्रह है। हे नारद! तू अपने कर्तव्य का भूलकर भी अभिमान मत करियो और स्वप्न में भी स्त्री की इच्छा मत करियो, सदा मेरे परायण रहियो, यह मेरा अनुशासन और उपदेश है। इसका अनुकरण करने से तुझे कभी मोह नहीं होगा और तू सदा सुखी रहेगा! तथास्तु!

नारदजी भगवान् की आज्ञा शिर पर धारण कर भगवान् के वचनामृत का स्मरण करते हुये, भगवान् का भक्तवत्सलता और दयालुता का गान करते हुये, मन में प्रसन्न होते हुये आकाश मार्ग से

बैकुंठ को चले गए।

पाठक! भगवान् एक हैं, एक होकर भी भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये एक से अनेक हो गये हैं, जो अनेक में एकता देखता है। वह भगवान का परम भक्त है।

लुट गया! गरीब लटगया!! डाका पड़ गया!!!

हरि पर्वत के थाने के समीप एक वृक्ष के नीचे एक पागल सा साधु पड़ा रहता है। सवेरे चार बजे एक सिपाही शहर में से गश्त लगा कर थाने को लौट रहा है। साधु समाधि में है, उसकी गुदड़ी उसकी पीठ की तरफ पड़ी है। सिपाही न मालूम क्या सोच कर गुदड़ी उठाले गया और जाकर थाने में रखदी। छै बजे साधु गुदड़ी न देखकर थाने में जाकर पुकार करता है "अरे, लुट गया, गरीब लुट गया, डाका पड़ गया, सरकारी राज में अंधेर! सब माल जाता रहा! रपट लिखाने आया हूं, कोई थाने में है या नहीं? क्या गरीब की सुनने वाला कोई नहीं है?" थानेदार नींद से चौंक कर मुन्शी को बुला कर रपट लिखने की आज्ञा देता है। मुन्शी रपट लिखने बैठा है:- मुन्शीः-बोल! तेरा क्या २ माल चोरी गया है? साधुः-लिखिये, एक रजाई। मुन्शीः और? साधुः-एक गद्दा। मुंशी-और? साधुः एक धोती। मुन्शीः-अच्छा! और? साधुः एक तकिया। मुन्शीः-और! साधुः- एक छत्री। मुन्शीः और? साधुः-और..... मुन्शीः अच्छी तरह याद करले, कोई चीज रह न जाय! साधुः और.....और..... गुदड़ी उठाने वाला सिपाही ताव में आकर गुदड़ी लाकर मुन्शी और थानेदार के सामने पटक देता है और क्रोधित होकर कहता है: "अजी! दरोगाजी! इसकी यह एक गुदड़ी है, यह ही चोरी गई है। (साधु से) अबे! तू बड़ा झूठा है। बदमाश! एक गुदड़ी तो चोरी गई है, और इतनी चीज लिखादी और फिर भी और और किये जाता है। क्या तेरा घर बजाज या दर्जी की दुकान थी? थानेदारः-क्या यह तेरी गुदड़ी है? साधुः हां! और किसकी है! इतनी कह कर साधु गुदड़ी उठा कर चलने लगा है। ठहर जा, तुझ पर हलफ दरोगी का मुकदमा कायम किया जायगा! साधु कोई सामान्य मनुष्य तो है नहीं, कि थानेदार की गीदड़ भभकी में आजाय, वह तो गुरु प्रजापति की आंखें देखे हुए है, विराट कौलेज का ग्रेजुयेट है, हिरण्यगर्भ यूनीवर्सिटी का सनदयाफ्ता है, माया विशिष्ठ की चीफकोर्ट का सनातन अध्यक्ष है, गुप्त रूप में दुनिया का तमाशा देख रहा है। हंसकर कहता है: साधुः दारोगा जी, खैराती मदरसे के पढ़े हुये दीखते हो, फीस देकर नहीं पढे हो, पढ़े ही हो गुने नहीं हो गोरों के बूट पूंछे हैं, गुरु की लंगोटी नहीं धोई है! भगवान करे मेजिस्ट्रेट हो जाओ तब हलफ दरोगी के मुकदमें कायम किया करना! जरा सिपाही को डाटना, नहींतो थानेदारी से भी हाथ धो बैठोगे, किसी छोटी चौकी पर भेज दिये जावेंगे सिपाहियों का पहरा चौकी लिखा करोगे!

इतना कह कर साधु लौट जाता है और गुदड़ी ओढ लेता है, यह रजाई है, फिर उसी को बिछा कर कहता है यह गद्दा है, बदन में लपेट कर कहता है, यह धोती है, सिरहाने रखकर तकिया बना लेता है और धूप में सिर पर रख कर छत्री बना कर

दिखा देता है और खिलखिला कर हंसता हुआ चला जाता है।

पाठक! देखा यह भगवान् के भक्तों की भक्ति है! ऐसों पर भगवान् का पूर्ण अनुग्रह होता है, वह सब में एक परमात्मा को ही देखते हैं। जैसे एकही गुदड़ी के अनेक कपड़े बन जाते हैं ऐसे ही एक परमात्मा अनेक रूप होकर भी एक का एकही है। भगवान् ने नारद से ब्रह्मचर्य की बहुत ही प्रशंसा की थी, उसके विषय में हम आपको एक अनुभवी वैद्य का अनुभव सुनाते हैं:-

चन्द वैद्य।

आगरे के पूर्व में ताजगंज नाम की एक बस्ती है, आजकल तो कुछ ऊजड़सी हो गई है, पहिले कभी बहुत गुलजार थी। वहां पर एक चन्द नामक विद्वान् वैद्य रहता था। उसने आयु भर में एक बार अपनी स्त्री से सहवास किया था और उसका फल उसका एक पुत्र था जब यह पुत्र कोई पांच वर्ष का था तब एक दिन पिता ने कहा "बेटा मैं बाजार जाता हूं, जो खिलौना तू कहे लेता आऊं" पुत्र बोला "पिता जी! खिलौने मेरे पास बहुत हैं, आप लाते हो रहते हैं, अकेले २ खेलना मुझे नहीं सुहाता, यदि मेरा एक भाई और हो जाय तो मैं उसके साथ आनन्द से खेला करूं। यह मेरी इच्छा आप पूर्ण कर दीजिये." पिता समझ गया कि यह अपनी माता के सिखाने से ऐसा कहता है, कहने लगा "बेटा! पड़ोस में बहुत से लड़के हैं, वे सब तेरे भाई ही हैं, उन्हीं के साथ खेला कर, भाई तो तेरे आधे खिलौने बांट लिया करेगा जो वस्तु होगी, आधी मांगेगा, लोभी हुआ तो तेरा भाग भी लेना चाहेगा, न देगा तो झगड़ा करेगा, इससे अकेला रहना ठीक है, कहावत है कि "माके पेट में ही से शत्रु होता है." इस प्रकार पिता पुत्र को समझा कर एकांत में स्त्री से कहने लगा "प्राण प्यारी! तन्दुरुस्ती हजार नियामत है, तन्दुरुस्ती स्वर्ग का भोग रूप है, विवाह होने से प्रथम और अब मुझ में जमीन आसमान का फर्क है प्रथम मैं रोगी की सूरत देखते ही उसका रोग पहिचान जाता था, अब नाड़ी देख कर भी बहुत विचार करने पर पहिचानता हूं, पहिले जो नुसखा एक बार पढने से याद हो जाता था अब कई बार पढने से याद होता है। बहुत दिनों तक याद नहीं रहता कुछ दिन बाद भूल जाता हूं! प्रथम पुस्तक में पढी हुई औषधियों को जंगल में देखतेही पहिचान लेता था, अब पुस्तक में पढ़े हुये औषधियों के लक्षणोंको भूल जाता हूं फिर पहिचानने में, कैसे आवें! योगशास्त्र में सवितर्क, सविचार सानन्दा और सास्मिता चार प्रकार की संप्रज्ञात समाधि बताई हैं यह समाधि मुझे जन्म से सिद्ध थीं, विवाह के बाद वह सिद्धि जाती रही, इन्द्रिय, मन और बुद्धि में जैसी दिव्य शक्ति प्रथम थी अब वैसी नहीं है, बच्चा होने से प्रथम जो सौन्दर्यता तुझ में थी अब कहां हैं? क्या तुझे प्रसव पीड़ा की याद नहीं रही? संतान के होने में स्त्री को महान् कष्ट होता है: उस का यौवन जाता रहता है जो सौंदर्यता प्रथम होती है पीछे नहीं रहती! स्त्री और पुरुष के शरीरमें वीर्यही सार है, इसीसे जीवन है! वीर्यके नाश होने से वे सत्व हीन हो जाते हैं, शास्त्राज्ञानुसार एक पुत्र होगया है यहही पर्याप्त है, सुपुत्र एक ही बहुत होता है, माता पिता के यश को बढ़ाता है, कुपुत्र आपभी कष्ट पाता है और माता पिताकी कीर्तिमें भी बट्टा लगाता है। सिंहणी एकही सिंह उत्पन्न करती है,

कुत्तिया दर्जनों पिल्ले जनती है ! मनुष्य शरीर बड़े पुण्य से प्राप्त होता है विषय भोगके लिये मनुष्य शरीर नहीं प्राप्त हुवा है, ईश्वर की भक्ति और ज्ञान इसी शरीर में होसकता है पितृऋण से हम तुम मुक्त हो गये हैं लोक संग्रह भी हो गया ! अब ईश्वर भजन में लगना चाहिये, ईश्वर सुख रूप है, संसार के पदार्थों में सुख नहीं है ! सब को सुख की इच्छा होती है, मूर्ख सुख को जानते नहीं है इसलिये संसार के पदार्थों में सुख ढूंढते हैं. उनमें सुख है नहीं, उलटा दुःख है इसलिये उन को सुख की प्राप्ति नहीं होती ! पंडित सुख के कारण को जानते हैं, इस लिये वे सुख रूप परमात्मा की प्राप्ति के यत्न में लगते हैं, उनको कभी भी दुःख नहीं होता और सुख रूप परमात्मा की प्राप्ति होती है। तू भी कुलीन कुल की बेटी है और मोक्ष शास्त्र की ज्ञाता है, फिर जान बूझ कर गड्ढे में क्यों पड़ती है ? मनुष्य शरीर को प्राप्त करके ईश्वर के भजन द्वारा अपना कल्याण कर लेना चाहिये, अधिक क्या कहूं, तू स्वयं चतुर है, चतुर के लिये एक शब्द बहुत होता है। इस प्रकार पति के प्रेमरस भरे हितकारक वचन सुनकर पत्नी का हृदय ईश्वर प्रेम से पूर्ण हो गया और अश्रुओं द्वारा बाहर निकल आया। गद्गद् हो कर उस ने पति के चरण पकड़ लिये, बहुत देर तक कुछ बोल न सकी, थोड़ी देर में सावधान होकर कहने लगी "हे स्वामिन ! आप ही मेरे पति, गुरु, ईश्वर हैं, आप के समान संतुष्टि-कारक, संसार निवारक, निःस्वार्थ हितकारी वचन कहने वाला दूसरा नहीं है ! ईश्वर का मुझ पर परम अनुग्रह है, जो संसार सागर से पार करने वाले आप समान पति मुझ को प्राप्त हुये हैं, मैं आप की आज्ञा का सदा पालन करूंगी और स्वप्न में भी विषय भोग की इच्छा नहीं करूंगी !" चन्द्र वैश्य पत्नी के वचन सुन कर संतोष को प्राप्त हुवा। शेष आयु पुत्र सहित दम्पति ने बड़े आनन्द से व्यतीत की। जहां यह रहते थे, वह गली अब भी गली चन्द्र वैश्य के नाम से प्रसिद्ध है, अनुकूल स्त्री पुत्रादि की प्राप्ति भी भगवान् का अनुग्रह ही है।

पाठक ! ईश्वर भक्ति में विश्वास की बहुत ही आवश्यकता है, जिन को ईश्वर में विश्वास है, उन की इस लोक की और परलोक की सब इच्छायें पूर्ण होती हैं।

अन्धा जैन साधु।

कोई सौ वर्ष से अधिक नहीं हुये, रिवाड़ी के जैन मन्दिर में एक जन्मका अन्धा जैन साधु रहता था यह साधु अपने मत का पक्का अनुयाई था, जिनेन्द्र भगवान् के अनुशासन का पूर्णरीती से पालन करता था, किसी की आज्ञा का यथा संभव उल्लंघन नहीं करता था एक दिन इस प्रकार विचारने लगा "भगवान ने रात्री में भोजन करने का निषेध किया है, मैंने कभी दिन देखा नहीं है, दिन का नामही सुना है, मेरे लिये तो सदा रातही है, मुझे भोजन नहीं करना चाहिये। जब तक मैं अपनी आंखों से दिन हुवा देख न लूंगा, तब तक भोजन नहीं करूंगा !" ऐसा दृढ़ निश्चय करके साधुने भोजन करना छोड़ दिया। सब ने बहुत समझाया, बुझाया परन्तु उस धुनके पक्के ने एक की न सुनी, एकांत स्थान में बैठ कर भूखा ही जिनेन्द्र भगवान् का ध्यान और उनके मन्त्र का जाप करने लगा। पांच दिन तक ऐसाही किया। छठे दिन सवेरे ही चार बजे जब वह लघुशंका को जाने लगा, मंदिरका द्वार कुछ खोटा था, न मालुम पांच दिन भूखे

रहने से, न मालूम भगवान् की प्रेरणा से, उसे छोटे दरवाजे का ध्यान न रहा, उस का सिर चौखट में इस जोर से लगा कि बिचारे को छटी का दूध तक आ गया ! क्या उसकी दृढ प्रतिज्ञा का यह ही फल था कि सिर भी फूट जाय ? नहीं चोट लगने से उस की आंखों का जाला फुल्ली कटकर दूर जा पड़ा और उस की आंखें भट्टा सी खुल गईं। भक्त वत्सल भगवान् की कृपा से रात का दिन हो गया ! दो तीन दिन तक आंखों में तकलीफ रही, पश्चात् तो वह ऐसा सूझती हुई आंखों वाला हो गया मानो कभी अन्धा था ही नहीं ! सच है, भगवान् सब के मनोरथ पूर्ण करते हैं, जीव को भगवान् के संमुख होने में ही देरी लगती है, भगवान् को अनुग्रह करने में देरी नहीं लगती ! भगवान का अनुग्रह तो सदा ही है, जीव ही अपने कर्मों वश अन्धा हो रहा है ! भगवान् जीव मात्र के हृदय में विराजमान हैं और श्रेय मार्ग की प्रेरणा करते रहते हैं।

तपस्वी अबुमुर्ताज।

अबुमुर्ताज़ नाम का एक प्रसिद्ध तपस्वी अरब देश के नशापुर नगर में हुआ है। यह बचपन से ही साधु हो गया था, दूर२ देशों में घूम आया था, पूर्ण भगवत् प्रेमी और वैराग्यवान् था, एक गुदड़ी के सिवाय और कुछ संग्रह नहीं करता था, एक ठिकाने नहीं रहता था, दिन रात ब्रह्म विचार में मग्न रहता था उस के हृदय में ईश्वर का प्रकाश होने लगा था। एक दिन उसने बगदाद की किसी गली में एक श्रीमान् गृहस्थ के दरवाजे पर पानी मांगा। एक षोडष वर्ष की युवा बाला सोने के गिलास में पानी लेकर आई। अबुमुर्ताज ने पानी पीकर गिलास कन्या को दे दिया और शाम तक वहीं पड़ा रहा। शाम को घरके धनी ने आकर कहा "शाह साहब ! यहां आप कैसे बैठे हैं ?" अबुमुर्ताज बोला "मैंने जब से पानी पीया है, मेरा दिल काबू में नहीं रहा, कहीं जाने को जी नहीं चाहता, इसलिये यहां ही बैठा हूं !" धनी ने घर में जाकर वृत्तांत पूछा तो मालूम हुआ कि लड़की पानी लेकर गई थी, स्त्री से कहने लगा जोहरा की मां ! फकीर खूब सूरत जवान है, अच्छे खानदान का है, जोहरा का निकाह इसके साथ कर दिया जाय तो कैसा है ?" स्त्री बोली "अच्छा है, मगर फकीर आजाद होते हैं, राजी हो जाय तब तो ठीकही है ! धनी बाहर जाकर कहने लगा हजरत ! जो लड़की आपको पानी लाई थी वह मेरी बेटी है यदि आपकी मर्जी हो तो मैं उसका निकाह आपके साथ करदूं। अबुमुर्ताज राजी हो गया। विवाह का दिन नियत किया गया, सगे संबंधियों को निमंत्रण दिया गया, नियत दिन आया, नौबत नक्कारे बजने लगे, विवाह की धूम धाम होने लगी, एक आवे, एक जावे, षट् प्रकार के भोजन तैयार कराये गये, काजीजी और मेहर लिखने वाले आगये, शाहसाहब की गुदड़ी उतार ली गई, उबटना मला गया, सुगंधित गरम जल से स्नान कराया गया नई कीमती रेशमी पोशाक पहिनाई गई, दुल्हा दुल्हन निकाह से प्रथम की निमाज पढ़ने बैठाये गये ! निमाज समाप्त होने न पाई थी, न मालूम बींधजी को क्या उचंग उठी कि रेशमी वस्त्रों को फेंक फांक कर नंगे धड़ंगे घरमें से पागल के समान निकल भागे और न मालूम किस कोने में जा बैठे कि बहुत खोज करने पर भी किसी को पता नहीं चला। बींधनी बींधको बींधने न पाने से विधी रह गई, सास आस टूटने से उदास हो

गई, सुसर की हज्ज अकबर अधूरी रह गई, साला दुल्हा भाई को सलाम न कर पाये, नगाड़े वालों के नगाड़े ओंधे हो गये, ताशे वालों के ताशे ठंडे हो गये, ढोल वालों के ढोल की पोल निकल गई, गाने वालियों के बिना गाये ही गले बैठ गये, स्वर भंग हो गया, दावत खाने को आये हुओं के साथ अदावत हो गई, काजी निकाह की पढाई बिना रह गये, मेहर लिखने वालों की लिखाई मारी गई, नौकर चाकर हाथ में कुछ न आने से हाथ मलते रह गये, और जो कुछ हुआ सो तो हुआ ही, हमारा कलम भी टूट गया ! चलो पाठक ! छोड़ो यह नाटक, नहीं तो खीर का साग भी नहीं रहेगा, रस में विष हो जायगा ! तीन महीने पीछे एक मुलाकाती ने शाहसाहब को एक गली में घूमते हुये देख कर पूछा "अजी हजरत ! उस दिन क्या मामला था ? आप पागल बने सो तो बने ही सबको पागल बना कर भाग आये !" शाह साहब बोले "भाई ! निमाज पढते २ अचानक मेरे दिल में से यह आवाज आई अरे पगले ! मुर्शद (गुरु) का दिया हुआ शाही बाना तो उतर गया दुल्हन का दिया हुआ लिबास जनाना पहिन लिया, ऊपर का कपड़ा तो छिन गया यदि निकाह कर लिया तो तेरे भीतर जो मेरी झलक हो रही है, वह भी जाती रहेगी और घुप्प अंधेरा हो जायगा, आज तक जो कुछ किया कराया है सब पर पानी फिर जायगा !" भाई ! इतना सुन कर मैं चौंक गया और सबको छोड़ छाड़ कर भाग निकला, खुदावंद करीम बड़ा रहीम है, अपने बंदों को हरदम चिताता रहता है, बचा लिया, नहीं तो उमर भर पापड़ बेलने पड़ते । काले सिर की बुरी होती है, अपने बाल तो पालती, मेरे बाल नोच २ डालती ! शुक्र है अल्लाह का ! बचा लिया परवर्दगार ने ! सुबहान तेरी शान ! मालिक कोनो मकान ! जो जानते नहीं हैं तुझे नादान, वे होते हैं पशेमान ! जो तेरी करते हैं बन्दगी, उनको हासिल होती चन्दगी । अन्त में दीन दुनियां से छुट कर खीर शक्कर की तरह तुझमें ही मिल जाते हैं ।"

प्रिय पाठक ! भगवान् सुख स्वरूप हैं, सबके हृदय में विराजमान हैं, भगवान् की भक्ति भगवान् की प्राप्ति का उपाय है भक्ति से भगवान् का शीघ्र दर्शन होता है । भगवान् के भक्तों के गुण गाना और सुनना यह ही भगवान् की भक्ति है । इसी का नाम सत्संग है भगवान् के गुण गाने और सुनने का सौभाग्य भी ईश्वर के अनुग्रह से प्राप्त होता है । ईश्वर के अनुग्रह और सम्पादक 'भक्ति' की प्रेरणा से जैसी कुछ हमारी टूटी फूटी, रूखी सूखी भोंडी भद्दी गंवारु भाषा है, उसमें ही भगवान् और भगवान्के भक्तों के अपूर्व चरित्रों के गान करने का सौभाग्य हम को प्राप्त हुआ है । यद्यपि भगवान् के चरित्र गाना सहज नहीं है, बहुत ही कठिन है, इसलिये हमारा मनोरथ पूर्ण होना असंभव सा है, फिर भी भगवान् समर्थ हैं, वे सबके मनोरथ पूर्ण करते रहे हैं और करते हैं, हमारा भी अवश्य पूर्ण करेंगे, ऐसा हमारा दृढ विश्वास है । माता पिता बच्चे की तोतली बाणी सुनकर प्रसन्न होते हैं इसलिये आशा है कि भगवान् पिता तो भगवत् गुण गान से प्रसन्न हों होंगे, यदि 'भक्ति' के प्रेमी पाठक भी प्रसन्न हुये तो सोना और सुगंध ! कुछ न कुछ लाभ तो सभीको होगा और स्वच्छ हृदय वाले भाई बहिनों को पूर्ण लाभ होने से सोना मीठा भी हो जायगा । भगवान् यह हमारा मनोरथ पूर्ण करें, 'भक्ति' के कुटुम्ब की वृद्धि हो और सबको अक्षय सुख स्वरूप भगवान् की प्राप्ति हो । बोलो, धनुषधारी, दनुजारी, कौशल्यानन्दन, दुष्टदल निकंदन भगवान् की जय ।

अघनाशक भगवत् चरित, अक्षय सुख दातार
भोला ! निश दिन गान कर, यदि चाहे उद्धार

देवके प्रति ।

[ले० श्री० मुरारी शर्मा 'अभय']

१

देव ! मेरे जीवन के देव,
करोगे कब दुःखिया को प्यार ?
प्यार-जो रहे सदा मम साथ,
दुखी का हरे हृदय-दुःख भार ।
तुम्हीं जब जीवन के आधार,
भला फिर क्यों रूठे सरकार ?

२

कहूं निज मन की तुम से बात,
सुनोगे क्या मेरे सर्वस्व ?
रहूं मैं रंगा तुम्हारे साथ ।
छोड़ कर यह छोटा सा विश्व ।
तुम्हारे प्यार बिना, सुकुमार,
हुआ है जीवन मेरा भार ॥

३

सहे बहु संकट औ सन्ताप,
किया वर्षों ही करुण विलाप ।
न फिर भी प्राप्त हुआ वह प्यार,
मिटाता जो-उर का गुरु ताप ॥
पड़ी जीवन तरणी मंझधार,
करोगे क्या न इसे तुम पार ?

४

घड़ी होगी कितनी अनमोल,
रहेंगे हम होकर जब एक ।
सुनूंगा तब मीठे से बोल,
भुलाकर सारा विश्व विवेक ।
मिला कर यंत्र वेणु, के तार,
करेंगे मिल कर प्रेम-विहार,

५

विश्व में और नहीं है चाह,
बतादो निज मिलने की राह ।
मिलन से रह कर वंचित देव,
करूंगा मैं कैसे निर्वाह ?
'अभय' हो करो अभय को प्यार ।
सदय हो करो विनय स्वीकार ॥

हम चाहते नहीं।

[ले० श्री० हनुमानप्रसाद जी पोद्दार सम्पादक "कल्याण"]

स स्थूल वाद प्रधान इन्द्रिय सुखान्वेषी संसार में स्वाभाविक ही ईश्वर पर श्रद्धा कम होती चली जा रही है। विषय वारुणी की मादकता से जगत् उन्मत्त होता चला जारहा है। जो लोग अपने को ईश्वरवादी मानते हैं और ईश्वर को सर्वव्यापी सर्वान्तर्यामी कहते हैं, वे भी जब छिपकर पाप करते हैं-मन में पाप वासनाओं को स्थान देते नहीं सकुचाते, तब यही प्रतीत होता है कि उनका ईश्वर को सर्वव्यापी और सर्वान्तर्यामी भी कहना विडम्बना मात्र है।

ऐसी स्थिति में ईश्वर और ईश्वर भक्ति के लिये कुछ अधिक कहना सुनना अरण्य रोदन के समान ही होता है परन्तु इस त्रितापदग्ध संसार के लिये ईश्वर भक्तिकी सुधाधारा के सिवाय अन्य कोई साधन भी नहीं है, जो हमें प्रति दिन बढ़ते हुये दुःखदावानल से बचा कर शीतल कर सके। इसलिये जगत् के मनोनुकूल न रहने पर भी समय समय पर सन्तों ने इस ओर लोगों का ध्यान खैंचने की चेष्टा की है।

ईश्वर स्वयं सिद्ध है और प्रत्यक्ष है उसे किसी के द्वारा अपनी सिद्धि कराने की अपेक्षा नहीं है। जीव जब तक माया मुग्ध रहता है तब तक उसे नहीं देखता, जिस दिन उसका भाग्योदय होता है उसदिन सन्त महात्माओं की कृपा से उसकी आंखें खुलती हैं, तब वह अपने सामने ही उस विश्वविमोहन मोहन को देख कर मुग्ध होजाता है। उस समय उस का जो माया का आवरण हटता है वह फिर कभी सामने नहीं आ सकता, वह कृतकृत्य हो जाता है। परन्तु मायामुग्ध प्राणी के लिये ऐसा अवसर कठिनता से आता है, जब भगवान् कृपा कर उसे सांसारिक विपत्तियों में डालते हैं, जब जगत् से हृदय में निराशा उत्पन्न होती है, उस समय सन्तों का संग प्राप्त होने पर भगवान् की ओर जीव की रुचि होती है। भगवान् का स्मरण दुःखमें अनायास हुआ करता है। इसी से देवी कुन्ती ने भगवान् श्रीकृष्ण से विपत्ति का वरदान मांगा था।

जब चारों ओर से विपत्ति के बादल मंडराने लगते हैं, कहीं से भी कोई सहारा नहीं मिलता, उस समय मनुष्य का हृदय स्वाभाविक ही उस अनजाने अनदेखे, निराश्रय के परम आश्रय किसी अचिन्त्य शक्ति की गोद में आश्रय चाहता है। उस समय उस के मुखसे सहसा यह शब्द निकल पड़ते हैं "कि प्रभो! अब तो तू ही बचा।" उधर से तुरन्त उत्तर मिलता है, 'मा शुचः'। औरउसे तत्काल आश्रय मिल जाता है, क्योंकि यह भगवान् का विरद है।

जो इस प्रकार निराश्रय का आश्रय है, विपदकाल

का परम बन्धु है, सब के द्वारा त्याग दिये जाने पर भी जो सदा साथ रहता है, दलित, अपमानित, होने पर भी जो हृदय से लगाने को तैयार है, पुकारते ही उत्तर देता है, सदा सब तरह से अभय दान देनेको प्रस्तुत रहता है और विशाल भुजा फैलाये तुम से आलिङ्गन करने को आगे बढ़ता रहता है। रे अभागे जीव! ऐसे परम हितैषी जीवन सखा की भी तू उपेक्षा करता है। अरे, उसे हृदय से चाहने और एक बार पुकाने में भी तुझे संकोच मालूम होता है

हम धनके लिए खून पानी एक कर देते हैं, स्त्री पुत्रादि के लिये धर्म कर्म तक को तिलांजलि दे डालते हैं, मान बडाई के लिये भान्ति २ के ढोंग रचते हैं। उनकी प्राप्ति के लिये चित्त संतत व्याकुल रहता है। खाना पीना भूल जाते हैं, मानापमान सहते हैं, रातों रोते हैं, खुशामदें और मिन्नतें करते हैं। निष्कपट चित्त से उन्हें पाने का प्रयत्न करते हैं परन्तु उस परमात्मा के लिये क्या करते हैं? जो हमारा परम धन है, परम आत्मीय है, क्या कभी उस के लिये हम ने सच्चे मन से एक भी आसूं बहाया? क्या कोई अपने हृदय को भली भान्ति टटोल कर, छाती पर हाथ रखकर यह कह सकता है कि मैं परमात्मा के लिये बहुत रोया, बहुत व्याकुल हुआ, परन्तु उधर से कोई उत्तर आश्वासन का नहीं मिला? मेरा हृदय उस के लिये तलमला उठा। परन्तु उसने दर्शन नहीं दिये? सच्ची बात तो यह है कि हमारे अनन्त शरीरों में आज तक कभी ऐसा सौभाग्य नहीं हुआ, यदि होता तो फिर इस कष्टमय स्थिति में हम रहते ही क्यों? हमारी आंखों से आंसू बहुत बार बहते हैं पर वह बहते हैं विषयों के लिये, परमात्मा के नहीं लिये, इसी लिये परमात्मा सदा हमारे साथ रह कर भी हमारी आंखों से ओझल रहता है। इसी से उस नित्य के संगी को हम कभी नहीं देख पाते उसको पाने के लिये धर्म कर्म छोड़ कर छल कपट पाप करनेकी आवश्यकता नहीं है, आवश्यकता है केवल छल छोड़कर उसे चाहने की। जिस दिन उस के लिये हमारा चित्त व्याकुल हो उठेगा, जिस दिन उस का वियोग क्षण भर के लिये भी सहन नहीं होगा, जिस दिन कृष्ण विरह के दावानल से हृदय दग्ध होने लगेगा, जिस दिन उस प्राणों से भी बढ़ कर प्यारे श्याम सुन्दर के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं सुहावेगा, उस दिन उसी क्षण में उसे बाध्य होकर दर्शन देने पड़ेंगे। उस समय उसको भी हमारा क्षण भर का वियोग सहन नहीं होगा। उस की तो प्रतिज्ञा है-

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्

(गीता)

भगवान का मिलना कठिन नहीं है, कठिन है विषय-व्यामोह से विमुक्त हो कर उसे हृदय से चाहना और अन्तर की आवाज से उसे पुकारना। यह सदा स्मरण रखो कि वह हम से मिलने के लिये सदा ही आतुर है, पर हम अभागे उसे चाहते नहीं!

नित्यं वदामि मनुजाः स्वयमूर्ध्वबाहु-
र्यों मां मुकुन्दनरसिंहजनार्दनेति।
जीवो जपत्यनुदिनं मरणे रणे वा,
पाषाणकाष्ठ सदृशाय ददाम्यभीष्टम्॥

श्रीकृष्ण से दो-दो बातें ।

[ले० वैष्णव, श्री० देवदास "देव" सम्पादक साधुसर्वस्व ।]

प्यारे कृष्ण ! हद हो चुकी, चुप्पी की भी अवधि होनी चाहिये, आपको स्मरण है, वह भी समय आज का ही सा था, जबकि आपने अपनी:-

यदा-यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

की प्रतिज्ञानुसार पुण्यश्लोका देवी श्रीयशोदा जी की पवित्र गोदकी प्रतिष्ठा की थी और किया था इस अपने भारतका उद्धार ?

भगवन् ! कहना न होगा कि, कंस उन हृदय-हीन अत्याचारी शासकों का सर्वस्व था जिनके हृदय में न दया थी, न प्रेम था, न धर्म था, न न्याय की गन्ध थी । पशुता का साम्राज्य देश के एक कोनेसे दूसरे कोने तक व्याप्त था । अधर्म, अन्याय, अत्याचारोंकी भरमार के आगे देश त्राहि त्राहि कर रहा था, आर्य संस्कृति, आर्य गौरव, आर्यादर्श, आर्य-धर्म सभी मुसीबत की मजबूत जंजीर से जकड़े हुये, अपने अन्तिम समय की स्वासांए गिन रहे थे । देश की हरी भरी आबादी स्मशान की तरह भयावह हो चुकीथी प्रजा पिस चुकी थी, धन लुट चुका था, गौरव गिर चुका था, अनन्त धान की राशियों के होते हुये थी, गरीबों को सुबसे दो दानें भी नसीब न होते थे, राज मदके आगे लोकमत गेंदकी तरह ठुकराया जाता था । चापलूसों के आगे सच्चे राजभक्तों की वाणी राजद्रोही मानी जाती थी ।

धर्म-अधर्म से, न्याय-अन्याय से, पुण्य-पाप से, सत्य-असत्य से, कर्म-अकर्मण्यता से दबा हुआ नजर आता था । ब्राह्मणों का ब्रह्मतेज, क्षत्रियों का क्षात्र धर्म, ऋषियों का ऋषित्व सभी पर आसुरी सत्ताका आधिपत्य सा जम गया था । समय इतना गम्भीर था कि, किसी में भी यह ताकत न थी कि, अत्याचारी कंसको उसके निश्चत किये हुये विचारों से उसे विचलित कर सके, उसके आगे उसके शासन कालका नंगा चित्र खींच सके, उसे उसकी भूलोंका भान दिला सके । आर्य देशकी पवित्र सभ्यता का प्रखर सूर्य मदान्ध अत्याचारी शासकों के कुकृत्य की घोर अंधेरी में छिपना ही चाहता था कि, यह आपसे देखा न गया । आपका हृदय दयासे भर आया, भक्तों के परिताप से आपकी आंखे आसुओं से डब-डबा गयीं । दीनोंकी आहोंसे आपका सिंहासन हिलही तो गया । आखिर आपको अपना आसन छोड़ना ही पड़ा । आप दौड़ते हुये आये । श्रीनन्द और देवकी के ऊपर गुजरते हुये कंसके अत्याचारों का प्रतिकार करने के लिये कारागृह में अवतीर्ण होकर,

महात्मा सूरदासजी

भक्ति शरद निशि पूर्णिमा शशि सुषमा भरपूर ।
भक्त रसिक कवि प्रेमनिधि कृष्ण नाम रत सूर ॥

Bhakti Press Rewari.

भक्तोंकी लाज रखी, दीनों की रक्षा की, अनन्त-अनन्त आत्माओं के आंसुओं का विमोचन किया और नाश किया उस कंस शाही का जिसे अपनी पशु सत्ता पर पूरा पूरा विश्वास था। अपनी सैनिक संख्या पर, अपने आयुधों की प्रदर्शनी पर, जो फूले नहीं समाता था।

कहो बृजराज! भारत में आपके अवतीर्ण होने का यही कारण था न? कहो "हां" अब जरा आज की दशा पर भी दृष्टिपात कीजिये आप "विनाशायचदुष्कृताम्" और 'धर्म संस्थापनार्थाय" के पूरे पूरे हिमायती हैं, यही कारण है कि, हमें आज आपसे दो-दो बातें कर लेनी हैं और आपको यह सुना देना है कि इस समय आप अपनी प्रतिज्ञा को भूले बैठे हैं।

भारतेश्वर! देखो, अपनी करुणामयी दृष्टि से देखो, अपनी दयालुता की दृष्टि से देखो, देशकी दशा देखो और अपनी प्रतिज्ञाकी पंक्तियां देखो।

हे दीन प्रति पालक! हम अभागों के भाग्यमें कहां है वह आनन्द? कहां है वह उल्लास? कहां है वह भाग्योदय की शुभ भावना? कहीं कुछ नहीं। प्रभो! सच मानो सब पर पानी फिर चुका है, हम आज हर प्रकार से असहाय हैं, दीन हैं, धन-जन-धान्य से लुटे हुए नदी के तटके वृक्ष हैं। हमारा सहायक, हमारा उद्धारक पथका प्रदर्शक कोई नहीं है, हमारे लिये आशाओं की दिशायें शून्य हैं। कहो, क्या यह हमारी दशा दृष्टि में लेने योग्य नहीं है? हमारी यह अन्तर आह, आपके लिये उपेक्षनीय है? क्या निराशाके अगम्य सागरमें डूबते हुए हम निराधारों को एक तृणका भी सहारा देना आपके लिये उचित नहीं है? फिर क्यों नहीं हमारी सुधि लेते? क्यों नहीं हमारी टेर सुनते? क्या यही आपकी प्रतिज्ञा पूर्त्ति है?

यदि "नहीं" तो, आओ-पधारो! भारत रूपी अर्जुन को अपनी गीता का ज्ञान सुनानेके लिये एकबार और भी हम अभागों के बीच पदार्पण करो और अपने कर्मयोग से हममें वह चेतनता लादो कि, हम आप का भली प्रकार से सत्कार कर सकें, और आपके जीवन के आदर्शको ठीक-ठीक भावसे समझ सकें। भगवन् बस! मात्र यही एक इच्छा है इसी में हमारा कल्याण है।

आह्वान।

[ले० श्री० स्वा० आनन्द भिक्षु जी सरस्वती]

"अरे! लोग कहते हैं, ईश्वर दीन-दुःखिया कीपुकार सुनता है। पर मैं पूछता हूं कहां है वह ईश्वर? एक दो दुःखिया हों, तो कहा जाय कि इनकी पुकार ईश्वर तक नहीं पहुंचती। परन्तु यहां तो सारा देश का देश बिलबिला रहा है, व्याकुल हो रहा है और ईश्वर का पता नहीं।"

वह कौन था? क्या था? वह राजा था, सिपाही था, दूत था जनरल था। वह त्यागी और गृहस्थी था। उसमें राग और वैराग्य दोनों अपूर्व थे। वह लड़ता और लड़ाता था। वह नीतिज्ञ, तत्ववेत्ता, और शास्त्रों

का ज्ञाता था। वह बाण विद्या में निपुण और मल्ल-युद्ध में कुशल था। वह धर्म उपदेष्टा था, महाभारत का नायक था। वह अनाथों का नाथ, अबलाओं का बल और देवियों के मान का रक्षक था। वह ग्वाल था, गोपाल था, और गरीबों का साथी और सखा था। वह प्रियतम, प्रेम की मूर्ति था। वह ज्ञानी था, कर्म योगी और योगीश्वर था। वह सबका सेवक था और सब उसे अपना स्वामी और सर्वस्व समझते थे। हा! कृष्ण क्या था, क्या न था? यह कौन बता सकता है?

वह एक ही समय में शत्रु और मित्र था। अग्नि और जल था, आकाश और पाताल था पूर्व और पश्चिम था। लोग उसे अपनी अपनी भावनाओं के अनुसार देखते और समझते थे। अहा कैसा महान् अस्तित्व! कैसा अपूर्व पुरुष!! हम उसे प्यार करते हैं, उसका आदर करते हैं। उसके चरण में अपना मस्तक टेकते हैं, और इसके लिये हम फूले अङ्ग नहीं समाते। वह हमारा है, हमारा रहेगा। हम उसे छोड़ नहीं सकते, नहीं, हम से कोई उसको छुड़ा भी नहीं सकता। हम संसार के साम्राज्य को त्याग सकते हैं, पर उसे नहीं। वह हमारा हृदय सम्राट् है। उसका पवित्र नाम हमारे लिए संजीवनी है। हम उसके नाम पर जीते और मरते हैं। उसका जीवन, प्रकाश और दिव्य प्रकाश का विस्तार है। हमें उसमें ऐहिक और पारलौकिक ज्ञान, शक्ति, सौन्दर्य और आनन्द प्राप्त होता है। हमारे हृदय में उसके लिए अगाध प्रेम और अटल भक्ति है।

क्या वह ईश्वर है या ईश्वर का कोई अवतार है? लोग कहते हैं जब कभी उसकी दिव्य कला किसी अंश या पूर्ण रूप से, किसी केन्द्र द्वारा प्रकट हो जाती है तो ईश्वर का अवतार होता है। होता हो या न होता हो, मैं उनके इन भावों की अवहेलना नहीं करता। पर हां मैं तो कृष्ण को मनुष्य ही मानता हूं और मनुष्य मानकर ही हृदय से आराधना करता हूं-उनके श्री चरणों में बड़ी भक्ति और श्रद्धा के साथ पुष्पाञ्जलि चढ़ाता हूं।

कृष्ण मनुष्य था। कैसा मनुष्य? जिस पर प्रकृति माताको गर्व था। देश और जातिको गर्व था। था? नहीं, अब भी है, और सदा रहेगा। वह गर्व कभी नष्ट नहीं हो सकता और न ही नष्ट किया जा सकता है। वह अमिट है। कृष्ण अपने समय में प्रकृति का सर्वोच्च नमूना था। वह पूर्ण और अद्वितीय मनुष्य था। वह अन्य मनुष्यों से प्रत्येक शक्ति में, बहुत आगे था चाहे वह शक्ति शारीरिक हो, आत्मिक हो, या मानसिक हो वह अन्धकार को दूर करने, आततायियों तथा अत्याचारियों को दण्ड देने, निर्बलों और अन्याय-पीड़ितों की रक्षा करने तथा धर्म को पुनर्जीवित करने के लिए संसार में आया था। और फिर आएगा। कब? जब हम उसे बुलाएंगे, बुलाने और स्वागत करने के लिए तैयार होंगे!

प्रभो! आओ, आओ, हम इस समय तुम्हें बहुत दीन होकर पुकारते हैं। तुम तो दीनों की बहुत सुनते थे। सुनते क्या थे, तुम दीनों के लिए थे ही। क्या हमारी न सुनोगे! देखो, देखो। पारस्परिक ईर्ष्या द्वेष ने हमारा सत्यानाश कर दिया है। हम कौड़ी के तीन हो रहे हैं। हमारी बुद्धि नष्ट भ्रष्ट हो गई। हम में धर्म विवेक और सत्य ज्ञान नहीं रहा है। नास्तिकता दिनों दिन बढ़ती जा रही है। धर्म-कर्म में कोई आस्था और निष्ठा नहीं रही है। गौ-

ब्राह्मण और ईश्वर भक्तों का निरादर होता है, और कोई नहीं सुनता। भगवें वस्त्रों की प्रतिष्ठा उठ गई है और साधु महात्माओं का मजाक होता रहता है। देश में एकदम हाहाकार मचा हुआ है। अन्न वस्त्र तक के लाले पड़गए हैं। देवियों की दशा शोचनीय है। विधवाओं का कष्ट असह्य है। वर्ण व्यवस्था अस्त-व्यस्त है। आश्रम धर्म की कोई मर्यादा नहीं। समाज में अनेक जातियां, उपजातियां उत्पन्न हो गई हैं। नीच ऊंच का भाव आए दिन बढ़ता जा रहा है प्रेम और सहानुभूति का स्थान घृणा और निर्दयता ने ले लिया है। हिन्दू और अहिन्दुओं के झगड़े साधारण और नित्य की घटना हो गई हैं। धर्म के नाम पर अधर्म हो रहा है। क्या इस समय और ऐसे समय में भी तुम यहां अपने पधारने की आवश्यक्ता नहीं समझते ?

दीनानाथ ! आओ, आओ ! अब विलम्ब न करो। हाय, हाय ! हमारी यह दशा है और तुम देखते तक नहीं, सुनते तक नहीं। भगवन ! इस समय संसार में आग लगी हुई है और तुम्हारे सिवाय, हां तुम्हारे सिवाय कोई उसको शान्त करने वाला नहीं है। अशान्ति की आग साधारण आग नहीं होती। भारतवर्ष के बाहर भी कम शोचनीय अवस्था नहीं है अफ्रीका में वर्ण भेद प्रबल है। श्वेताङ्ग काली जातियों को तबाह करने, बरबाद करने, संसार से मिटाने के लिए तुले हुए हैं। श्रमजीवियों और पूंजी पतियों में गहरी अनबन है। पड़ोसी-पड़ोसी में नहीं बनती। पिता पुत्र स्त्री-पुरुष, आदि में यथोचित प्रेम और सद्भाव पूरित नहीं। अमरीका में ईसाई, पादरियों और विकासवादियों में बेतरह ठनी हुई है। लोगों को पुराने धर्म और पुरानी सभ्यता से शान्ति नहीं मिलती। कहां तक कहा जाय चारों ओर कलह, दुःख और अशान्ति के काले बादल छाए हुए हैं। करोड़ों मनुष्य दुखों से बिलबिला कर ईश्वर को पुकारते हैं। उस से प्रार्थना करते हैं, परन्तु दुःख कम नहीं होते। मुसीबत नहीं टलती। और यही कारण है नास्तिकता के भावों के बढ़ने का धर्म से आस्था उठ जाने का। प्रभो ! अब विलम्ब न लगाओ। आ जाओ ! आ जाओ ! ! दीन हृदय तुम्हें पुकार रहे हैं, तुम्हें आह्वान कररहे हैं, तुम्हारे स्वागत के लिए तैयार हैं। क्या इस आह्वान की ध्वनि तुम सुनोगे ? क्या वे दीन हृदय जो सदा तुम्हारे सुन्दर एवं पवित्र नाम के सहारे जीते हैं तुम्हारी प्रतीक्षा करें ?

जिन को चितमें नितमैं चितवौं तिन की रति मो तन माह रति ना।
वह आन पुमान के सङ्ग रति पुनि ता मन में गणिका गृह कीना ॥
धिक् है अबला भृत कन्दर्प अरु मोर धिकार जो मार अधीना।
इनि रीति समूह की प्रीत तजी नृप होय योगीश्वर ईश्वर चीन्हा ॥

(श्रीभर्तृहरी)

वर देवो हे प्रेममयी।

[ले० श्रीमती सुमित्रादेवी भगवद्भक्ति आश्रम]

हे सुख दायिनी, परम सुहावनी !
भक्ति पावनी, परम पुनीत !
प्रेममयी, कल्याण कारिणी !
जग जननी हे ! स्मृति अतीत ! ॥१॥

वाणी फिर से गादो ललिते,
हे अपनी वो ललित ललाम।
चारु सुकोमल चरण स्पर्श कर,
अब करती हूं तुम्हें प्रणाम ॥२॥

स्निग्ध दृष्टि तुम हम पर करिके,
करो हमारे उर में वास।
नष्ट भ्रष्ट ये सब कर डालो,
हे जननी ! ये जग के त्रास ॥३॥

अपनी शुचि परिमल से जननी,
हृदय पटल पुनीत कर अब।
मंजुल हृदय करो हे जननी,
शान्ति प्रेम सरसा दो अब ॥४॥

स्नेह हास दिखला कर जननी !
अपने हृदय लगा लेना।
अविचल प्रेम हमारे उर में,
हरि का खूब जमा देना ॥५॥

हरि प्यारे, जग के रक्षक से,
जननी आज मिला देना।
इस आशा को जननी ! जननी !!
निराशा न परिणित कर देना ॥६॥

भक्ति भाव से पूरित करिके,
हृदय में आज बसा देना।
निज गात लगा कर पावन करिके,
उन से आज मिला देना ॥७॥

रोम २ में तुम से केवल,
वासित हों हे शान्तिमयी।
संग तुम्हारा निशि दिन होवे,
वर देवो हे प्रेम मयी! ॥८॥

भगवद्भक्त गो-भक्त ।

[ले० श्री० गंगाप्रसाद जी अग्निहोत्री ।]

गावोऽस्म' वनम् ।

संतोषका विषय है कि वर्तमान भौतिक युगमें भी, कल्याण, भक्ति और राम जैसे पत्रोंके संचालक और संपादक गण, परानुग्रहकांक्षा से प्रेरित होकर, माया जाल में आशिखांत फसी हुई जनता का ध्यान भगवद्भक्ति की ओर आकृष्ट करते रहते हैं। जो साक्षर और सधन भारतवासी समय निकाल कर उक्त पत्रिकाओं को देखा करते होंगे, उन्हें उनके पठन से आत्मलाभ अवश्य ही होगा।

आत्मलाभ की इच्छा से भगवद्भक्ति का आश्रय करने वाले लोगों की संख्या मंद गति से बढ़ती जाती है। यह निःसंदेह आनंद की बात है। साथ ही यह अत्यंत खेद की बात है कि जो लोग भगवद्भक्त बनने के इच्छुक रहते हैं, वे उस कार्य को सर्व्वथा भूले हुए हैं जो भगवद्भक्ति की नींव को दृढ़ करता है। भगवद्भक्ति की नींव को दृढ़ करने वाला कार्य्य गोपाल और गोविंद श्रीकृष्ण के सत्य पूर्ण वचनों में गोभक्ति ही है। भगवान् श्रीकृष्ण का यह कथन अक्षर अक्षर सत्य है कि विश्वमाता गौ ही हमारी वह देवता है जिसकी प्रसन्नता से हमें सब ऐहिक और पारमार्थिक मंगलों की प्राप्ति हो सकती है। कल्याणी गौ में ऐहिक और पारमार्थिक कल्याण करने की अपूर्व शक्ति यदि न होती तो गोपाल श्रीकृष्ण न तो उसे देवता ही मानते और न स्वयं उसकी सेवा ही करते।

इस समय जो धनवान लोग गोपाल श्रीकृष्ण के लिये लाखों रुपयों की लागत से विशाल मंदिर बनवाते हैं, उनके राजभोग में सहस्रों रुपये खर्च करते रहते हैं उन्हें इस बात को ध्रुव सत्यमान रखना चाहिये कि, जब तक वे विश्वमाता गौकी यथोचित और यथेष्ट सेवा का प्रबंध नहीं करेंगे, तब तक उनकी उक्त प्रकार की सेवा गोविंद श्रीकृष्ण को कभी स्वीकृत नहीं होगी। इस अनिष्ट से आत्मरक्षा करने की जिन सज्जन भगवद्भक्तों की उत्कट इच्छा हो, उन्हें सर्व्व प्रथम यही उचित है कि वे कल्याण परंपरा की दात्री गौकी सेवा का प्रबंध करें।

भारत की अक्षर गोभक्त जनता में शास्त्रीय गोपरिपालन विधि की शिक्षा का चिरकाल से जो अभाव हो गया है, उसके कारण भारत के अस्तित्वाधार गौ के वंशका बड़ी तीव्र गति से बध द्वारा नाश किया जा रहा है। इस नाश को रोकना प्रत्येक धनवान भगवद्भक्त का काम है, क्योंकि यथार्थ गोभक्त बने बिना कोई भगवद्भक्त हो ही नहीं सकता! जो लोग यथार्थ गोभक्ति की उपेक्षा और अवहेलना कर भगवद्भक्त बनने का प्रयास करते हैं उनका वह प्रयास

व्यर्थ और विफल ही है। मनुष्य मात्र के हृदय में सात्विक बुद्धि तभी उत्पन्न होकर पनपती है, जब उसका हृदय सात्विक भोज्यान्नों के रसों से बनता, बढ़ता और परिपुष्ट होता है। सात्विक भोज्यान्नों को पैदा करना गोवंश के आधीन ही है। उसको इस महत्ता के कारण ही गोविंद श्रीकृष्ण ने उसे देवता कह कर उसे परिपालन का शब्दिक उपदेश ही नहीं दिया है किंतु स्वयं गो सेवा करके गो सेवाके आदर्श की स्थापना की है। जो लोग उस आदर्श का आदर नहीं करते वे भगवद्भक्त का पद नहीं पा सकते। उनकी भगवद्भक्ति का फल उन्हें वही मिलेगा जो कलकत्ते के गोविंद भवन में पामर हीरालाल को मिला है। तात्पर्य भगवद्भक्ति को प्राप्त करने के लिये गोभक्ति-गोपरिपालन-प्रथम सोपान है।

जिन थोड़े से धनवान भगवद्भक्तों ने इस समय पिंजरापोल और गोशालाएं खोल रखी हैं और उनके पीछे प्रति वर्ष सहस्रों नहीं लाखों रुपये खर्च करते रहते हैं वे यदि यह मानते हों कि उक्त संस्थाओं के संचालन द्वारा वे गोभक्ति का पुण्य प्राप्त कर रहे हैं, तो उनकी वह भावना सर्व्वथा भ्रांत और हानिप्रद है। उक्त संस्थाओं द्वारा गोवंश का अणुमात्र भी वह उपकार नहीं किया जाता जिस उपकार के कारण गोपाल श्रीकृष्ण ने गौको अपना देवता माना है। जिन सज्जनों को पिंजरापोल और गोशालाओं के कामों का थोड़ासा भी ज्ञान है, उन्हें यह बात मालूम ही होगी कि उक्त संस्थाएं गोवंश के प्राणियों का पालन तब आरंभ करती हैं जब वे अज्ञान वश विकलांग तथा अनुपयोगी बना डाले जाते हैं। इस प्रकार की गोरक्षा से हमारा गोधन भी नष्ट होता है और धन भी नष्ट किया जाता है। गोरक्षा का सच्चा स्थान पिंजरापोल और गोशाला नहीं हैं। गोरक्षा के सच्चे स्थान किसानों और ग्वालों के घर हैं। किसानों और ग्वालों के घरों में जब तक अपरिपालन रूप अंधकार छाया हुआ है तब तक लाखों उपाय करते रहने से भी गोरक्षा नहीं की जा सकेगी। अतः यह अत्यंत आवश्यक है कि अधर गोभक्त जनता में गोपरिपालन की शिक्षा का प्रचार किया जाय। गोपरिपालन की शिक्षा के प्रचार से ही गोभक्ति दृढ़ होगी और उससे भगवद्भक्ति दृढ़ होगी।

यह कोई बात नहीं है कि ग्रामों में बसने वाले किसान ग्वाले और गृहस्थ जन ही गोपरिपालन की शास्त्रीय विधिको भूलगये हैं। नहीं नगरों में बसने वाले बड़े बड़े विद्वान और धनवान तक गोपरिपालन विधि को भूलगये हैं। इस भूल का सुधार जितने शीघ्र किया जायगा उतने शीघ्र ही भारत में भगवद्भक्ति की नींव दृढ़ होगी। इस भूल के सुधार का एक मात्र यही उपाय है कि इस समय जिन भारतीय धनवानों ने अपने आपको भगवद्भक्त घोषित कर रखा है वे स्वयं अपना एक संघ बनाकर भारत के बंबई, कलकत्ता, करांची, कानपुर, नागपुर, जबलपुर और दिल्ली आदि बड़े २ नगरों में पहुंचें। वहां के विख्यात भारत भक्त धनवानों को एकत्र कर उन्हें समझावें कि अनुचित पालन के कारण भारत के अस्तित्वाधार गोधन का भीषण मात्रा में जो नाश किया जा रहा है, उसका रोकना आप लोगों के हाथों में ही है। आप लोग अपने नगर में गोपरि पालन की शिक्षा का प्रचार करने का यथेष्ट प्रबंध कीजिये। नागरिक और ग्रामीण जनता में गोपरिपालन की शिक्षा का प्रचार करने

के लिये सस्ता गोसाहित्य विद्यमान है। उपयुक्त प्रचारकों को उसकी शिक्षा देकर उसका प्रचार कराइये। इस काम का करना भारतीय धनवान भगवद्भक्तों के सब प्रकार बशकी बात है उसे न कर उसके लिये सरकार का मुंह ताकते रहना सर्वथा क्लीवता और स्वधर्म पराङ्मुखता है।

क्या भगवद्भक्ति के मार्ग प्रदर्शक धनवान लोग उक्त उपायों का अवलंबन कर गोभक्ति के मार्ग को भारत में एक वार पुनः पुष्ट करने का पुण्य प्राप्त करेंगे ?

यमदूत वाणी

इन्द्रवज्रा छन्द।

[ले० श्री० पूज्य भोले बाबा जी ॥]

रे जीव ! तूने नहिं तत्त्व चीन्हा।
तत्त्वं पदों का नहिं शोध कीन्हा ॥
कीन्हे न तूने श्रवणादि कोई।
दुर्लभ्य योंही नर देह खोई ॥१॥

रे मूढ़ ! तूने न विवेक कीन्हा।
वैराग्य नाहीं शम आदि भी ना ॥
ना स्वप्न में भी शठ मुक्ति चाही।
आयु गई भोगन में वृथा ही ॥२॥

नाहीं परा भक्ति तुझे सुहाई।
प्रेमा न चाही नवधा न भाई ॥
रे मूढ़ ! ना तू गुण ईश गाये।
ना सन्त या साधु तुझे सुहाये ॥३॥

ना योग कीन्हा नहिं सांख्य जाना।
स्वाध्याय में भी नहिं मोद माना ॥
ना धारणा की नहिं ध्यान कीन्हा।
कैसे करे संयम सूक्ष्म झीना ॥४॥

ना यज्ञ कीन्हा नहिं धर्म कीन्हा ॥
ना दान दीन्हा नहिं कर्म कीन्हा ॥
संध्या न कीन्ही जप ना सुहाया।
भाई दया ना तप भी न भाया ॥५॥

वापी तथा कूप नहीं खुदाया।
प्याऊ न खोली जल ना पिलाया ॥
ना अन्न का क्षेत्र कहीं बनाया।
विद्यालयों में धन ना लगाया ॥६॥

कामी सदा लोलुप भोग भाया।
क्रोधी हुआ लालच ही सुहाया॥
साले सगों का धन मार खाया।
मोटा हुआ मांस सदा बढ़ाया॥७॥

खेला जुआ या व्यभिचार कीन्हा।
चोरी करी या कम तोल दीन्हा॥
पानी मिलाके पय बेचता था।
धोखे घड़ी से धन खैंचता था॥८॥

छोटे बड़े दो गज थे बनाये।
दूने करे था कहके सवाये॥
दो भांति के थे घर बाट राखे।
चर्बी रखे था घृत में मिला के॥९॥

लेता रहा रिश्वत तू सदा ही।
खाये पुये दीन मृषा गवाही॥
काटा किया पार्सल रेल के रे।
वर्णों कहां लों अघ दुष्ट तेरे॥१०॥

तू गाय भैंसें बहु पालता था।
चारा उन्हें तू नहीं डालता था॥
भूखी बिचारी मरती रहें थी।
बाजार में या फिरती फिरें थी॥११

या दूसरे की कृषि जा चरें थी।
लाठी टटोंगे सहती रहें थीं॥
पानी कभी शुद्ध नहीं दिखाया।
नाली नलों का जल ही पिलाया॥१२

तू जानता था यम राज नाहीं।
ना न्याय कर्ता परलोक मांहीं॥
देखे न कोई मम पाप भारी।
चैतन्य मैं हूं जड़ विश्व सारी॥१३

धर्ती तके थी जल देखता था।
वायु लखे थी रवि पेखता था॥
आकाश बातें सुनता वहां था।
थी रात ठाढ़ी दिन या खड़ा था॥१४

भूतादि द्वारा सुन सर्व लीन्हा।
जो जो किया तू हम जान लीन्हा॥
रे दुष्ट पापी अब दंड देंगे।
ना टेर तेरी कुछ भी सुनेंगे॥१५॥

धिक्कार ऐसे यमदूत देहीं।
पापी जनों के हर प्राण लेहीं॥
जा चेत प्राणी मत पाप कीजो।
चैतन्य सारा जग जान लीजो॥१६॥

कोई नहीं कर्म कभी छुपेगा। अच्छा बुरा या फल भोग देगा॥
ऐसा कहें हैं श्रुति सन्त सारे। भोला वही वाक्य यहां उतारे॥१७

तुम कहां हो ?

[ले० श्री० भट्ट रामशंकर मोहन जी]

चाहे किसी भी धर्म के अनुयायी हो, चाहे कैसा भी तिलक धारण करते हो, लेकिन तुम हो कहां ? इस का भी कभी विचार करते हो ?

देव दर्शन भी करते होगे, माला भी फेरते होगे, एक दिन में आठ जगह कथा वार्ता भी सुनते होगे लेकिन तुम कहां हो इस का भी कभी विचार करते हो ?

भले ही राज सेवा करते हो, सोने के पालणे में श्रीठाकुर जी को झुलाते हो, देव सेवा में सोने चांदी के बर्तन व्यवहार में लाते हो, देव सेवा में बैठ कर कभी किसी को स्पर्श भी न करते हो, लेकिन तुम कहां हो इस का भी कभी विचार करते हो ?

चाहे चार धामकी यात्रा कर आये हो, यात्रा में से आकर धूम धाम से गंगा पूजन किया हो, सगे संबन्धियों को अच्छी २ वस्तुयें समर्पण कर हर्षाये हो, लेकिन तुम कहां हो इस का भी कभी विचार करते हो ?

बड़ी बड़ी जेवनार करके खूब सत्कार करते हो, सगे सम्बन्धियों से खूब वाह वाह लूटते हो लेकिन तुम कहां हो इस का भी कभी विचार करते हो ?

चाहे बड़े २ तख्त पर खड़े होकर लम्बी २ वक्तृताऐं झाड़ते हो, चाहे सहस्रों मनुष्य तुम्हारी चरण रज लेते हों, आगे २ घी की मसाल लिये झड़ीदार पुकारता चलता हो लेकिन तुम कहां हो इस का भी कभी विचार करते हो ?

अच्छे २ सुन्दर बंगले में रहते हो, पलंग सिवाय कहींभी नहीं बैठते हो, न मोटरों सिवाय दूसरी सवारी ही करते हो, आनन्द और मौज के लिये धन उछालते हो, लेकिन तुम कहां हो इस का भी कभी विचार करते हो ?

देश प्रदेश के महान् पुरुषों के इतिहास जानते हो, योरोप और अमेरिका वगैरह देशों की धार्मिक तथा राजनैतिक स्थिति के सम्पूर्ण जान कार हो, देश देश के भूगोल के भी ज्ञाता हो, लेकिन तुम कहां हो इस का भी कभी विचार करते हो ?

वकील और बैरिस्टर होकर बड़े२ मुकदमें जीतते हो, धनका खजाना तुम्हारी तरफ दौड़ा आता हुआ हो, लोग तुम्हारी वाह २ करते हों, लेकिन तुम कहां हो इसका भी कभी विचार करते हो ?

पढ लिख कर चाहे पण्डित हो गये हो, एम. ए. पास होकर कहीं मुख्याध्यापक हो गये हो व्यापारी होकर लाखों रुपया कमाते और खोते हो, प्रभुता प्राप्त कर सैकड़ों मनुष्यों पर हुक्म चलाते हो, ठेकेदार होकर बड़े बड़े महल चिनवाते हो, चाहे किसी प्रकार के काम करते हो, सुख दुःख से पेटभी

भर लेते हो, लेकिन तुम कहां हो इसका भी कभी विचार करते हो ?

बहनों से !

चाहे तुम स्त्री हो, सुन्दर सुन्दर वस्त्र और आभूषण मिलने से पागल हो गई हो, पति सुख में उन्मत्त हो, चार पांच पुत्र और पुत्र वधु द्वारा सम्मानित हो, लेकिन तुम कहां हो इस का भी कभी विचार करती हो ?

संक्षेप में चाहे तुम सौ कार्य करती हो, चाहे जिस वर्ण आश्रम में हो, चाहे सफेद या भगवां वस्त्र पहन कर साधु वेष धारण किया हो, लेकिन तुम कहां हो इसका भी विचार प्रत्येक पुरुष स्त्री को करना चाहिये।

ऊपर बताई हुई धार्मिक क्रिया तुम करते हो, इसी लिये यह बुरी है यह कहने का हमारा तात्पर्य नहीं है। समय का दुरुपयोग करने से तो यह सब अच्छा ही है। लेकिन रास्ते में रगड़ते ही रहने से मुकाम की तरफ आगे बढ़ना ही योग्य है। जिस प्रकार कसार का लड्डू करने के लिये घी लाना ही चाहिये इसी प्रकार धार्मिक क्रियाओं को प्रकाशमय करने की इच्छा वालों को इस नम्र विनती को सुनना चाहिये।

तुम कहां हो ? इससे तुम्हारा शरीर कहां है यह बात नहीं लेकिन ? तुम्हारा मन कहां है ? याने किस विषय में तल्लीन है। जिस वस्तु में मन तल्लीन है वह वस्तु सत् है या असत्, इसका भी कभी विचार करते हो ? २- मनुष्य जीवन रूपी यात्रा में मृत्यु आने के पहिले जीव भाव में से निकल कर शिव भाव (ब्रह्म) को प्राप्त करने रूपी मुकाम पर पहुंचने के लिये कितने आगे बढ़े इसका भी कभी विचार करते हो ?

बड़े दुःख के साथ कहना पड़ता है कि बहुत से गाफिल जीव तो उलटे मनुष्यत्व में से निकल कर पशुत्व में जारहे हैं खाना, पीना, पुत्रोत्पन्न करना भय, से डरना, मौत आवे तब मरना वैगरह गुण तो पशु में भी होते हैं। कितने ही तो पशु से भी नादान हो गये हैं। दिन प्रतिदिन नये नये पाप करने में डरते ही नहीं। मानों मौत के सपाटे को भूल ही गये।

जन्म मरण संकट सहे कियो न प्रभु से मेल
धंधो करते दल गयो जिमि घाणी को बैल

अगर यह ऊपर की बातें सत्य हों तो अपने आस पास की गड़ बड़ में से अपने मन को स्वतन्त्र करो। तुम चाहे कोई भी हो लेकिन तुम्हें मरना जरूर पड़ेगा और साथ में कुछ ले भी नहीं सकते। अपने सामने कितनों ही को हाथ मलते देखा अपनी भी यही दशा समझो। मरण काल की असह्य वेदना से जिनको बचाने वाले समझते हो, जिनके वास्ते अनुचित काम करते हो, जिनके वास्ते भगवान् को भी भूल गये, उनमें से कोई तुम्हें बचाने वाला नहीं है। मरणोपरान्त पाप भोगने के लिये फिर जहां पुनर्जन्म धारण करोगे और जहां जिनके बीच में रह कर जिनके लिये पाप करते हो उनमें से भी बचाने वाला कोई नहीं है।

तो फिर यहां शंका होती है कि फिर तो काम ही नहीं करना चाहिये ?

नहीं काम करो, लेकिन जहां पाप हो वहां से पीछे हट कर श्रीहरि का स्मरण करो और हो सके तो पुण्य करो लेकिन पाप तो करो ही मत सन्तोष और शांति का किसी तरह भी पालन करो। दूसरों को

कष्ट हो ऐसे बर्ताव को आग्रह पूर्वक छोड़ो। अपने धन और विद्वता को जगत् भर के हिसाब से पानी के बिन्दु सदृश समझ कर मद न करो! किसी से सेवा करा कर नहीं लेकिन दूसरों की सेवा कर के प्रसन्न होओ। जिस तरह अपनी निन्दा अपने को नहीं रुचती इसी तरह दूसरों को भी समझो। सादा और पवित्र जीवन वर्तने का आग्रह रखो। व्यसन और विषय को विष तुल्य समझ कर तज दो।

चाहे तुम भक्त वैष्णव हो, वेदान्त की मोटी २ बातें करते हो, लेकिन अगर तुम्हें बार बार क्रोध आता है और धन देख कर लोभ होता है, स्त्री को देख कर पागल समान हो जाते हो, तो अभी तुम वहीं हो। आगे बढ़ने का प्रयत्न करो।

धूल का स्वभाव है कि उड़ उड़ कर घर में आवे, लेकिन हम लोग उसको बुहारी से झाड़ कर साफ कर लेते हैं। इसी तरह नाले में दुर्गंध आना स्वाभाविक है, लेकिन हम उसको पानी डाल कर साफ करते रहते हैं। इसी प्रकार संसार में विषय कुटेव, निन्दा, पाप, काम, क्रोध, लोभरूपी धूल चारों तरफ उड़ रही है। कान और आंख रूपी इन्द्रिय द्वारा हृदय में प्रवेश करती है। सावधान पुरुष सद्विचार रूपी झाड़ू से इसको साफ करते रहते हैं। सत्पुरुषों के समागम और सद्ग्रन्थों के अवलोकन से वह झाड़ू प्राप्त होती है। लेकिन तुम कहोगे कि हमारे पास समय नहीं है। संबंधियों के पास निमन्त्रण खाने को समय मिलता है, पंचो में नंबर पहिला रखने के लिये समय मिलता है, सुनार के घर बैठने को समय मिलता है छत पर बैठ कर बड़ी बड़ी गप्प मारने को समय मिलता है। सुनो:-

जिसके वास्ते राजा लोग राज पाठ का सुख छोड़ देते हैं, जिसके लिये ऋषि मुनि जंगल में ही निवास करते हैं, और अभी भी कितने ही पवित्र पुरुष काशी हरिद्वार आदि पवित्र स्थलों में अपना जीवन बिता रहे हैं, उस आनन्द के लिये एक घड़ी भर भी अवकाश न मिले तो शोक से कहना पड़ेगा कि हम लोगों ने मनुष्य जन्म का लाभ समझा ही नहीं।

याद रखना कि जिसमें तुमको इस समय आनन्द लगता है वह तो दूसरी दूसरी योनियों में भी मिलते हैं। बड़े आदमियों के कुत्ते भी सोने की जंजीर पहनते हैं, पशु पक्षियों को भी स्त्री पुत्र और भोजन मिलता है, लेकिन जिस समय यमदूत वारंट लेकर आवेंगे उस समय भी कहना कि अभी फुरसत नहीं है।

गृहस्थाश्रम में रह कर मोह वश धर्म का त्याग करने वाले स्त्री पुरुष शोक के ही लायक हैं। खाने पीने को मिला हो, आरोग्य शरीर मिला हो, जिस पर भी श्रीहरि को न भजे तो इससे बढ़ कर और क्या अनर्थ है? साधु होकर धन तथा स्त्री और मान बड़ाई से अलग न रह सके वह साधु नहीं अधम है।

श्रीरामनारायणवासुदेव,
गोविंदवैकुण्ठमुकुन्दकृष्ण।
श्रीकेशवानन्तनृसिंहविष्णो,
मां त्राहि संसारभुजंगदष्टम्॥

पागलपन ।

[ले० श्री० छेदीलाल जी गुप्ता बी. ए.]

गलपन कितना मधुर और साथ ही साथ कितना भयावना शब्द है। मधुर उनके लिये जिन्होंने इसका आनन्द चखा है, इसका अनुभव किया है, और भयावना उन सबके लिये जो इसे दूरसे खड़े२ देखा करते हैं, ऊपरी लक्षणों को देख कर अनुमान लगाया करते हैं। पागलपन ? पागलपन कितनी सुंदर-शांत और साथ ही साथ कितनी दयनीय तथा अशांत अवस्था है, जिस अवस्था में ऐसी मस्ती भरी हुई हो जो अपनी तुलना न रखती हो, जिसमें वह आनन्द भरा हुआ हो, कि जिसके सामने किसी भी प्रकार की चिंता, निराशा, कायरता ठहर ही नहीं सकती हो, जिसमें सांसारिक झगड़ों का विधि निषेधादिका पता न हो और हो न लोभ मोह आदि अशांति के कारण ? वह कितनी सुंदर शांत अवस्था होगी ? साथ ही दयनीय तथा अशांत इसलिये कि इसमें स्थित मनुष्य को हम-जो स्वयं ही संसार के पीछे पागल हो रहे हैं, जो सारे विश्व की बुद्धि के मालिक होने का दावा रखते हुये भी संसार की झूठी माया में फंस कर मिटे जा रहे हैं, और जो लाखों दृष्टांतों को देख कर भी धनादि के पीछे अपना नाश कर रहे हैं दया का पात्र समझते हैं, उस पर दया दिखाने का दावा करते हैं और उसको अपनी समाज की अशांति का कारण समझते हैं। ऐसे पागलपन के पीछे आइये हम भी पागल बन जांय ! क्यों ?

पहिली बात तो यह है कि पागल धुन के बड़े पक्के होते हैं। जिस बात की धुन लगन लग जाती है, जो ध्यान बंध जाता है उसी पर मर मिटते हैं। सारा विश्व चाहे एक तरफ हो जाय समाज की शक्तियां चाहे उसके विरुद्ध हो जांय पर वे परवाह नहीं करते दूसरी बात यह है कि, वे सदैव आनन्द में डूबे रहते हैं। किसी पागल से जाकर पूछिये कि वह क्यों पागल है ? हंस देगा। उसकी इस हंसी में क्या इस प्रश्न का पूर्ण उत्तर नहीं भरा रहता है ? वह कितने आनंद में मस्त है क्या इसका पता इसकी हंसी से नहीं लग सकता ? साथ ही क्या बिना किसी आंतरिक सुख के भी कोई इतना मस्त-बेपरवाह रह सकता है ? क्या यही दो बातें पूर्ण सफलता प्राप्त करने के लिये पर्याप्त नहीं हैं ? पर हम इन सबको नहीं देखते। अपनी सामाजिक धार्मिकया दूसरी तरह की गुलामी की बेड़ियों में जकड़े हुये, पद पद पर पर विधि निषेधके चक्कर में पिसते हुये, अपने लिये बुद्धिशाली वैभवशाली और न जाने क्या २ समझते हुये भला इन बातों को हम कैसे जान-देख सकते हैं ? पर हम

चाहे देखें, या न देखें यह बात जरूर है कि बिना पागल बने कोई भी महत्व का कार्य सिद्ध नहीं होता।

इस बात के उदाहरण भी पर्याप्त मिलते हैं। जितने बड़े बड़े कार्य हुये हैं सब पागलों द्वारा हुए हैं न्यूटन ने जब आकर्षण शक्ति का सिद्धांत निकाला था, सारा संसार उसे पागल समझता था। प्रारंभ में हवाई जहाज आदि के आविष्कर्ताओं की बातें पागलपन के सिवा और कुछ नहीं समझी जाती थीं। अब भी लेनिन का साम्यवाद और गांधी का चरखावाद पागलपन की सनक गिनी जाती है। पर पागलों को क्या! वे तो अपनी बात के पीछे पड़ जाते हैं और विजय प्राप्त कर लेते हैं। यह तो साधारण सांसारिक विषयों का हाल है। इनमें तो कभी २ बिना पागल बने भी सफलता, असफलता या जो कुछ भी कहो मिल जाती है। पर जहां प्रेम का प्रश्न आ पड़ता है वहां तो इसके बिना गुजारा ही नहीं होता। यहां तक कि समझदारों ने-पागलों ने इसे प्रेम का एक लक्षण और वह भी बहुत ऊंचा लक्षण समझ लिया है। बात भी ठीक है। अब तक के उदाहरणों से यही पता लगता है कि पागल बने बिना प्रेम हो ही नहीं सकता। लैला, मजनूं, शीरी-फरहाद आदि सारे दीवानों को देख लीजिये। यह तो दुनयवी प्रेम की बातें हैं! पर जहां ईश्वर से प्रेम होता है वहां तो यह एक मात्र लक्षण ही है।

ईश्वर से प्रेम करना, परमात्मा की भक्ति करना और वह भी पागल बने बिना यह कैसे हो सकता है? क्योंकि 'प्रेम पंथ पावकनी ज्वाला' तो माथा साटे मोंधी (तेजी) वस्तु' है। यह बिना पागल बने थोड़े ही खरीदी जा सकती है? इसके अतिरिक्त आप बड़े २ भक्तों को देख लीजिये। सब पागल मिलेंगे - सूरदास ने अपनी आंखें ही फोड़ डालीं, रसखान ने ब्रजभूमि में लोट लगाना ही शुरु कर दिया, उधर को श्री चैतन्य महाप्रभु ने लोक लाज छोड़ ज्ञानादि को धता बता भगवत् प्रेम में नाचने गाने में ही जीवन पूर्ण कर दिया। कहिये थे न एक से एक बढ़ कर पागल! मीराबाई ने राज, पाठ, पति आदि सारे सुख छोड़ कर साधुओं भिखारियों की संगति में ही जीवन सार्थक मान लिया। प्रह्लाद ने अपने पिता से लड़कर भगवन् के लिये सारे दुःख झेलने में आनन्द माना। पांच वर्षकी नादान अवस्था में बालक ध्रुवको परम पिता से मिलने की धुन सवार हो गई। सारांश यह कि किसी न किसी रूप से थे सब ही पागल। और तो और सकल जगत् के नियन्ता सबदेवों के देव महादेव जी भी सांप बिच्छु लपेट कर भस्म रमा कर, खप्पर हाथ में लेकर स्मशान में ही पड़े रहते हैं। अतः बिना पागल बने ईश्वर से प्रेम नहीं हो सकता। तो आओ पाठको! हम भी उस सच्चिदानन्द, सर्वेश्वर सर्वान्तरयामी, घटघट वासी, भक्त प्रतिपालक, दुष्टदल घातक जगत्पिता के प्रेम में पागल हो जांय। छोड़दें सारी चिंताओं को, तजदें सामाजिक धार्मिक बेड़ियों को। हमको पागलों को प्रेमियों को इन सबसे क्या मतलब? फिर हमें तो अपनी मस्ती से पागलपन से ही फुरसत नहीं मिलेगी? अगर संसार हंसता है तो हंसने दो परवाह नहीं। अगर दुनियां बुरा कहती है तो बकने दो हमें क्या? हम तो अपने प्यारे से मिलने की धुन में इतने मस्त होजांय, आनंद में इतने लीन हो जांय कि और बातों का पता ही नहीं चले। आओ. अपने आनंद को प्यारे की विनति करके ही व्यक्त करदें और उनसे कहें कि-

बना दो पागल अब भगवान् ॥
हर लीजे सब बुद्धि मेरी हर लीजे सब ज्ञान ॥
विधि निषेध के झगड़ों में से मुझे उबारो नाथ।
लोक लाज कुल लाज प्रभो! अब रहे न मेरे साथ
सामाजिक धार्मिक बंधन जो उन्हें जाऊं मैं भूल।
भूलूं काम क्रोध आदिक सब भव बन्धन के मूल
बनकर प्रेमी रहूं मस्त अरु करूं सदा गुण गान
रहे न होश देह का मुझ को रहे न दूजा ध्यान

मधुरी तान

[ले. श्री. दुर्गाप्रसाद जी गुप्ता]

नीरवता के सुखद समय में, कौन सुनाता है यह तान ?
उत्सुकता बढ़ गई हृदय में, लगा उधर ही मेरा ध्यान ॥
जादू का इस में प्रभाव है, या अमृत की बहती धार ।
जो सुनते ही बढ़ा चाव है, हृदय उमंगता बारम्बार ॥
आली! मधुरी धुनि वाली की, आज निराली है कुछ धुन ।
सुन्दर तानें बनमाली की, मतवाली हूं मैं सुन सुन ।
हर्ष और आनन्द का मनमें, अनुभव होता है इस बार ।
दृश्य मनोरम है आंखों में, कानों में मीठी गुंजार ॥
मुरली होठों पर धर कर अब, कुंजन में विचरें भगवान् ।
मन्द मुस्कराते हैं कुछ जब, बज जाती है 'मधुरी तान' ॥

——

परमभक्त प्रह्लाद जी

भक्त प्रह्लादजी की कथा श्रीमद्भागवत, विष्णु पुराण तथा महाभारतादि प्रसिद्ध ग्रन्थों में सविस्तर लिखी हुई है। यह भगवान् के दासोंमें प्रथम गिनने योग्य, मनस्वी, और भगवद्धर्म के अग्रणी हुए हैं। इनके पिताका नाम हिरण्यकशिपु था। जब भगवान् ने वराह रूप धारण करके हिरण्याक्ष को परमधाम में पहुंचा दिया तो हिरण्यकशिपु को बड़ा क्रोध आया। उसने अचल राज्य पाने के लिये मन्दराचल पर्वत की कन्दिरा में जाकर दारुण तप करना आरम्भ किया। पीछे से राजा इन्द्रने उसके सब घर बारको नष्ट कर दिया। उसकी स्त्री गर्भवती थी। गर्भ में प्रह्लाद जी थे, इन्द्र उसकी स्त्री को भी पकड़ कर ले चला। पश्चात् नारद जी ने इन्द्र से हिरण्यकशिपु की स्त्री को छुड़ा कर अपनी पालना में रक्खा और उसको ज्ञान का उपदेश दिया। प्रह्लाद जीने गर्भ में ही नारद जी का सब उपदेश सुना। इसीके फल स्वरूप वह भक्तों में शिरोमणी हुये हैं।

उधर हिरण्यकशिपुको कठिन तपस्या करते करते जब बहुत काल व्यतीत हो गया तो ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर उसको इच्छित वर मांगने के लिये कहा। तब हिरण्यकशिपु ने कहा कि हे वरदोत्तम! जो आप मुझको वर देना चाहते ही हैं तो यह वरदें कि आप की सृष्टि के रचे हुए किसी पदार्थ वा किसी जीव मात्र से मेरी मृत्यु न हो। बाहर, भीतर, दिन में, रात में, आपके रचे हुए शस्त्रों से, भूमि में, आकाश में, मनुष्य से, प्राणधारी, निर्जीव, सुर, असुर, इत्यादिकों से युद्ध में मेरी हार न हो। सारे संसार में मात्र मेरा ही राज्य हो। जिस प्रकार सब लोकपाल आपको मानते हैं वैसे ही मुझको मानें। जब दैत्यराजने इस प्रकार ब्रह्मा से इच्छित वर देने को कहा तो ब्रह्माने वह वर जो कि किसी पुरुष को मिलना कठिन था देदिया। दैत्यराज पश्चात् अपने स्थान पर लौट आया, उसने फिर से अपना स्थान बना लिया, सब सामग्री इकट्ठी करली और त्रिलोकी के राज्य का अधिकारी होकर देवताओं को बन्धन में डाल दिया। उसने अपने भाई हिरण्याक्ष के मरण का स्मरण कर विष्णु भगवान् को वैरी समझा और उनसे वैर करने लगा। सब देवता उसके भयसे भयभीत होकर अच्युत भगवान् की शरण में जाकर प्रार्थना करने लगे। वह निद्राको तजकर, इन्द्रियों को जीत कर, समाधि लगा कर हृषिकेश भगवान का भजन करने लगे, तब उनको अभय दायक आकाश वाणी ने इस प्रकार कहा:-

"हे देवो! तुम कुछ भय मत करो तुम्हारा कल्याण होगा, मेरी वाणी और मेरा दर्शन सब जगत् का मंगल दाता है, उस दुष्ट दैत्य की दुष्टता मैं भले प्रकार जानता हूं। इसकी शान्ति मैं बहुत शीघ्र करूंगा। अभी कुछ काल धैर्य धरो जो मनुष्य

देवता, वेद, गौ, साधु, धर्म और मुझसे वैर करते हैं वह शीघ्रही नष्ट होजाते हैं। यह मेरे परमभक्त अपने पुत्र महात्मा प्रह्लाद से वैर करेगा, इसलिये चाहे यह वर भी पाचुका है तो भी मैं इसको विना मारे कदापि नहीं रहूंगा"। देवताओं ने ऐसी मंगलकारिणी आकाशवाणी को सुनकर बड़ा आनन्द माना।

समय पाकर दैत्यपति के परम उदार चार सुकुमार उत्पन्न हुए। यद्यपि प्रह्लाद जी उनमें सबसे छोटे थे तदपि वह गुणों में अपने अन्य तीनों ज्येष्ठ भ्राताओं से बढ़ चढ़ कर थे। वह ब्राह्मणों के रक्षक, शील सम्पन्न, सत्य वादी, जितेन्द्रिय, जीवमात्र को अपने आत्मा के समान मानने वाले थे। वह सज्जन पुरुषों के चरणों को दास की नांई सेवन करते, गुरु जनों को ईश्वर समान जान कर पूजन करते, कभी मनमें उद्विग्न नहीं होते, सब व्यसनों से दूर रहते, सुनते देखते सब कुछ, परन्तु इस लोक के और परलोक के पदार्थों को अनित्य समझते, सदा इंद्रिय, प्राण, शरीर, बुद्धि को दमन करते, यद्यपि असुर के घर में जन्मे थे तो भी सुरों को सुख देने वाले थे। बालकपन का उन्होंने कोई खेल नहीं खेला, न कभी किसी खिलौने से खेले, केवल शालिग्राम की मूर्ति को ही खिलौना समझते रहे, संसार के और खेलों को छोड़ कर विष्णु भगवान के चरणारविंदों में ही मन को लगाते रहे, भगवान रूपग्रहने उनकी आत्मा का ग्रहण कर लिया था, केवल जड़की नाईं रहते थे, बैठते, चलते, खाते, पीते, सोते जागते, बोलते, बतलाते गोविंद रूप में ही लीन होने के कारण उनको इन बातों की सुधि नहीं थी, भगवान के ध्यान में ऐसे मतवाले रहते थे कि कभी रोते थे, कभी हंसते थे, कभी उनकी लीलाओं का स्मरण करके पुकार २ कर मन ही मन में मग्न होते थे, कभी उत्कण्ठित हो "हरे हरे" पुकार उठते, कभी नाचने लगते, कभी भगवान की भावना करके तन्मय हो जाते, कभी भगवान की मनोहर छवि के ध्यान में मग्न होकर मौन हो जाते, कभी आनन्दित होकर आंखों से आंसू बहाते और कभी नेत्र बन्द करके हृदय में मनोहर की मनमोहिनी छवि का दर्शन करते।

दैत्यराज अपने पुत्र के ऐसे लक्षण देख कर अकारण ही उससे वैर करने लग गया। दैत्यों ने शुक्राचार्य को अपना पुरोहित बनाया था। उनके शण्ड और आमर्क दो बेटे थे। दैत्यराज ने प्रह्लाद को दण्डनीति सीखने के लिये उनके पास भेज दिया। यह प्रह्लाद तथा अन्य असुर बालकों को दण्डनीति की शिक्षा देने लगे। प्रह्लाद जो कुछ गुरुजी पढ़ाते थे उसको सुन कर समझ कर गुरु के आगे वैसे ही पढ़लेते पीछे उस पर कुछ भी ध्यान नहीं देते। उनको इस झूठे जगत्से क्या प्रयोजन था? इसी हेतु गुरुकी बात इनको अच्छी नहीं लगती थी।

एक दिन हिरण्यकशिपु ने अत्यन्त लालन पालन करके अपने बेटे प्रह्लाद को गोद में बिठा कर पूछा कि हे पुत्र! जो वस्तु तुझे प्यारी लगती हो वही मुझे कह तुझे मंगादूं। प्रह्लाद ने कहा हे पिता जी! मुझे तो सब पापों के नष्ट करने वाले, चराचर के स्वामी, दया के सागर हरि भगवान के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं चाहिये। दैत्यराजने कहा कि बालक की बुद्धि शत्रु की ओर चली गई है इसलिये गुरुजी से कहो कि बालक को घर लेजा कर अच्छी प्रकार से पढावें। शण्ड और आमर्क प्रह्लादको अपने घर ले आये और प्रेम से पूछने लगे कि हे वत्स! तेरी बुद्धि सब बालकों से अच्छी है, तेरी बुद्धि में

भक्ति

कप्तान राव बहादुर राव बलबीरसिंह जी ओ. बी. ई., एम. एल. सी.

प्रेसीडेण्ट श्री भगवद्भक्ति आश्रम, जागीरदार रेवाड़ी।

Bhakti Press Rewari

यह विपरीत भाव कहां से आगया? तुझे किसी और ने सिखाया है या तेरी बुद्धि आपसे आप फिर गई है? प्रह्लाद जी ने कहा कि परमात्मा की माया ने अपना पराया यह भेद मनुष्यों के मनों में डाल रक्खा है और असत् वस्तु का मोह उत्पन्न किया है, परन्तु वह मोह उन्हीं के मनों को मोहित करता है जिनकी मति को उसकी माया ने मोह लिया है। जब परमेश्वर पुरुषों के अनुकूल होता है तब पशु-वत् बुद्धि वालों की भी भेद बुद्धि निवृत्त हो जाती है। वह और है हम और हैं यह द्विधा दूर होजाती है। इस आत्माको अपना पराया समझना ही मूर्खता है, जिस परमात्मा की गति अपरम्पार है, उसी परमात्मा ने मेरी मति को फेर दिया है, वह ही मेरे हृदय में वास करके मुझको सिखा रहा है। जैसे चुम्बक पत्थर की आकर्षण शक्ति लोहे को अपनी ओर खींचती है ऐसे ही मेरे मन को भगवान् चक्रपाणि अपनी ओर को खींचते हैं, परन्तु मैं यह कुछ नहीं जानता कि भगवान् का ऐसा अनुग्रह मुझ पर क्यों है? प्रह्लाद की ऐसी बात को सुन कर वह ब्राह्मण बड़ा क्रुद्ध हुवा और अनेक प्रकार से डरा धमका कर नीति सम्बन्धी विद्या प्रह्लाद को सिखाने लगा। कुछ दिन के पश्चात् जब शण्ड आमर्क ने अपने मन में जाना कि यह साम, दान, दण्ड भेद आदि सब बातें भली प्रकार सीख गया है तब वह प्रह्लाद को दैत्यराज के पास ले गया। प्रह्लाद ने अपने पिता के चरणों में प्रणाम किया। दैत्यराज ने अत्यन्त स्नेह से पुत्र को पास बिठा कर पूछा, कि बेटा गुरु से जो कुछ पढा है वह सुनाओ। प्रह्लाद ने कहा कि नारायण की कथा सुनना, विष्णु का नाम लेना, भगवान् का स्मरण करना, जनार्दन का पूजन करना चक्रपाणि की अर्चना करना, परमेश्वर की वन्दना करना, वृन्दावन बिहारी का दास बनना, श्रीकृष्णचन्द्र से सुहृद्भाव मानना, अपने आपे को विश्वनाथ विश्वम्भर की भेट कर देना यह नौ प्रकार की भक्ति होती है, उपरोक्त नवधा भक्तिका अनुष्ठान करना यही पढने का उत्तम सार है। इतने दिनों तक गुरुने जो कुछ पढाया उसमें ऐसा उत्तम विषय कोई पढने में नहीं आया।

जब हिरण्यकशिपु ने पुत्र के ऐसे बचन सुने तो क्रोध के मारे उसके होठ फड़कने लगे और तुरन्त गुरु को बुलाने को आज्ञा दी। जब वे आये तब उनसे कहने लगा कि, हे ब्राह्मणाधम! तैंने मेरे पुत्र को यह क्या शिक्षा दी, तैंने विष्णु सम्बन्धी असार बातें सिखा कर मेरे पुत्र को बिगाड़ दिया। गुरु पुत्रों ने कहा हे महाराज! यह बातें इसने हमसे नहीं सीखी हैं, और नहीं हमने इसे सिखाई हैं। यह सब बातें तो इसकी स्वाभाविक बुद्धि से ही उत्पन्न हुई हैं। ब्राह्मणों की यह बातें सुन कर दैत्येन्द्र ने फिर प्रह्लाद से पूछा कि बता तेरे अन्दर यह खोटी बुद्धि कहां से आई? प्रह्लाद जी कहने लगे कि, जिन्होंने अपनी इन्द्रियों को नहीं जीता हो पापकी रीति को नहीं छोड़ा हो, ऐसे अन्ध नरक में जाने वाले, कुटुम्ब की ममता में बारम्बार चाबे हुए चर्वणको चबाने वाले पुरुषों की बुद्धि न अपने आपसे, न दूसरे के सिखाने से, न शत्रु मित्रके कहने से ही विष्णु भगवान् की ओर जाती है। महा अभिमानी दुष्ट हृदय वाले, विषय वासना में लवलीन, न परमार्थ को माने न विष्णु को जाने, न अपने स्वार्थ को पहिचाने, ऐसे पुरुषों से दीक्षा लेने वाले मनुष्य परमेश्वर को नहीं मानते, वह जैसे अन्धा अन्धे को लेकर कूए में गिर पड़ता है ऐसे ही रौरव नरक में गिरते हैं। ऐसे दुर्मति, विषय

वासना के मदमाते जब तक निस्पृह, महात्मा पुरुषों के चरणारविन्द की रज को अपने शीश पर धारण नहीं करते तबतक उनका अनर्थ किसी प्रकार भी दूर नहीं हो सकता और न ही कोई मनोरथ सिद्ध हो सकता है और न ही गोविन्द भगवान् के पादारविंद में उनका मन लग सकता है। इतनी बात कह कर प्रह्लाद चुप होगये। तब हिरण्यकशिपु ने कुपित होकर उनको गोद में से भूमि पर डाल दिया और क्रोध पूर्ण शब्दों से कहा कि इस दुष्ट को मेरे सामने से अभी ले जाओ और मार डालो. क्योंकि यह अधम वध करने ही के योग्य है। यह विश्वासघाती अपना होकर शत्रु का कार्य करता है, इसलिये मार डालना ही अच्छा है। खाते, पीते, सोते, जागते, उठते बैठते जिस उपाय से बने इसे मार डालो। दैत्यराज की ऐसी आज्ञा सुनकर दैत्य त्रिशूल आदि शस्त्र हाथ में लेकर प्रह्लाद पर प्रहार करने लगे। परन्तु यहां पर तो:-

जाको राखे साईयाँ मार न सके कोय।
बाल न बंका कर सके जो जग बैरी होय॥

वाली कहावत पूर्ण रीति से चरितार्थ हो चली। भक्त राज प्रह्लाद तो भगवत् के ध्यान में लीन थे। ऐसे परम भक्तको भला वह अधम दैत्य कैसे मार सकते हैं। जब राक्षसों के सब अस्त्रशस्त्र व्यर्थ होगये तो दैत्येन्द्र बड़ा शंकित हुवा और प्रह्लाद के मरवाने के अनेक उपाय सोचने लगा। मदमस्त हाथियों के बीच में प्रह्लाद को छोड़ दिया। भयंकर सर्पों से कटवाया, समुद्र में डुबाया, पर्वत से गिराया, बड़े २ हलाहल विष दिये, अग्नि में डाल दिया, शिलाओं के नीचे दबाया इत्यादि अनेक उपाय प्रह्लाद के मारने के किये, परन्तु प्रह्लाद का बाल भी बांका नहीं हुवा। दैत्येन्द्र को प्रह्लाद की मृत्यु न होने से बड़ा शोक हुवा तब शण्ड और आमर्क को पुनः आज्ञादी कि इस को पुनः दण्ड नीति की शिक्षा दो। शण्डामर्क प्रह्लाद को पुनः अपने घर पर ले आये और उसको दण्ड नीति की शिक्षा देने लगे। प्रह्लाद को उस शिक्षा से क्या प्रयोजन था? जब गुरु काम काज में लग जाते तो वह अपनी बराबर के बालकों को अपने पास बुला लेते और उन को भगवत् सम्बन्धी उपदेश देते! उन्होंने सब बालकों को यह भजन भी याद करा दिया:-

भजो रे भाई हरि हर हरि हर॥
आदि ब्रह्म अद्वैत निरंजन,
भय भञ्जन धरणी धर॥
जब भक्तन को असुर सतावत,
प्रकट होत तेहि अवसर॥
दुष्ट मार भू-भार उतारत,
विश्वनाथ विश्वम्भर॥
कबहुं विहार करत भक्तन संग,
धर धर वेष मनोहर।
कबहुं संहार करत सब जग को,
धर कर वेष भयंकर॥
ऐसे प्रभु को भजन करो तुम,
मन लगाय निशि वासर॥
शालिग्राम वही बोलत हैं,
आठ पहर घट भीतर॥

समय समय पर प्रह्लाद अपने सहपाठियों को कहा करते थे, कि देखो भाई! मनुष्य जन्म मिलना

बड़ा कठिन है, यदि मिल भी जाय तो भी स्थिर नहीं परन्तु वास्तव में मोक्ष का देने वाला तो मात्र वही जन्म है। मनुष्यों को चाहिये कि इस संसार में जन्म लेकर वासुदेव भगवान के चरणारविन्द की सेवा करे। परमात्मा सब जीव मात्र का आत्मा है इसी हेतु सबका प्रिय और सुहृद है। देखो भाई मनुष्य को विषय सुख के लिये कोई उपाय नहीं करना चाहिये, यह तो खग, मृग तथा सब को कर्म गति से आप ही मिल जाता है। भगवान् वासुदेव की भक्ति करने से जो आनन्द प्राप्त होता है ऐसा और किसी प्रकार से नहीं प्राप्त हो सकता। इसलिये श्रीमुकुन्द के चरणारविंद में प्रीति बढ़ाने से सब खटका मिट जायगा। पुरुष परिवार के लालन पालन मात्र में रह कर यह भी नहीं जानते कि हमारी आयुका नित्य एक एक मिनट घट रहा है। वह भगवान् को प्रसन्न करने में तथा उनका भजन करने में किंचित् भी समय नहीं देते। यह संसार असार है, सब वस्तु नाशवान् हैं, केवल भगवान का नाम ही सार है, इसलिये सर्वदा उसके चरणों ही में मन लगाना हमारा कर्तव्य है। यह देह हमको केवल भगवान के भजन करने के अर्थ मिली है। तुम सब भगवन् की शरण होकर उन्हीं का स्मरण और भजन किया करो, भगवान के यहां जाति तथा कुल का भेद कुछ भी नहीं है। मैं भी तुम्हारा ही सजाति हूं। देखो भगवान् ने कैसे कैसे दुःखों से मेरी रक्षा की है।

प्रह्लादजी के ऐसे भाव पूर्ण तथा भक्ति भरे वचनों को सुन कर, बालकों का हृदय द्रवीभूत हो गया। आखों से प्रेमाश्रुवों की धाराएं बह चलीं और सब बैठ कर राम नाम का जप करने लगे। गुरु जी जब पाठशाला में आये तो क्या देखते हैं कि आज तो रंग ही दूसरा है, सब विद्यार्थि प्रह्लाद का रूप बने हुए हैं। इन सबकी बुद्धि पर प्रह्लाद के उपदेश का पूर्ण असर पड़ गया। दैत्येन्द्र ने तो प्रह्लाद को ही उसका राम लेना छुड़वाने के लिये मेरे पास भेजा था, यहां तो आज सारे बालक राम नाम ले रहे हैं। यह देख कर गुरुजी डरे और तुरंत सारा वृत्तान्त हिरण्यकशिपु से जाकर निवेदन किया। इस असह्य और अप्रिय वचन को सुनकर उसका शरीर कांपने लगा और उसने प्रह्लाद के मारने का विचार किया। उसने तुरन्त प्रह्लाद को बुलवाया और अत्यन्त क्रोध करके कहने लगा कि, हे कुलकलंक! कुलमें भेद डालने वाले, तैंने मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया है, आज तुझे मैं अवश्य यम लोक को भेजूंगा। अरे नीच मेरे क्रोध से सब दिक्पाल, लोक पाल और त्रिलोकी के ईश्वर समेत कांप रहे हैं, परन्तु तू निःशंक होकर मेरी आज्ञा का उल्लंघन करता है, ऐसा तुझको किस का बल है? भक्तवर प्रह्लाद उसके इन कठोर शब्दों से तनिक भी नहीं घबराते हैं और अभय होकर कल्याण कारिणी वाणी द्वारा इस प्रकार कहते हैं कि हे राजेन्द्र! सब चराचर जीव जन्तु को जिसने अपने बश में कर रक्खा है, उसी आदि पुरुष का मुझ में तुम में तथा समस्त में बल है। हे पिताजी! आप अपने इस असुर स्वभाव को छोड़ दो, सब में समान भाव रक्खो, अपने आपको अनन्त भगवान् के अर्पण करदो, इसीमें आपका भला है। आपने चाहे दशों दिशाओं को जीत लिया है, परन्तु आपके शरीर रूपी गृह में तो काम क्रोधादि शत्रु घुसे बैठे हैं, जब तक आपने इनको नहीं जीता तब तक मैं तो यही कहूंगा कि आपने कुछ भी नहीं जीता है। प्रह्लाद के ऐसे नीति भरे बाण समान वचनों को सुन

कर हिरण्यकशिपु आपे से बाहर होगया और खड्ग हाथ में लेकर कहने लगा कि जो तू कहता है कि परमात्मा सर्वत्र है तो बता तेरा वह परमात्मा इस खम्भे में कहां है ? यदि इस खम्भे में तेरा परमात्मा नहीं दीखा तो तेरा अभी शिरच्छेद कर डालूंगा ! ऐसा कहकर दैत्येन्द्र ने बल पूर्वक एक मुष्टिक खम्भ में मारी, तब बड़ा भयंकर शब्द हुवा। उसी समय भगवान् ने अपने भक्त की रक्षा और बचन सत्य करने के निमित्त वैशाख शुक्ल १४ को मध्याह्न के समय हिरण्यकशिपु की मुलतान राजधानी में नरसिंह रूप धारण किया। तब दैत्येन्द्र और नरसिंह भगवान् का युद्ध हुवा। युद्ध होते होते जब सायंकाल का समय हुवा तब भगवान् ने महल की देहली के बीच में दैत्येन्द्र का हृदय विदारण कर डाला और उसको परमपद दिया तब सब देवताओं ने भगवान की स्तुति की, परन्तु किसी को इतना सामर्थ्य नहीं हुवा कि भगवान् के समीप जाकर उनकी शान्ति करे। अन्त में ब्रह्माजी ने भक्तवर प्रह्लाद को भेजा। प्रह्लाद जी ने जाकर दण्डवत प्रणाम करके भगवान् से प्रार्थना की, कि हे प्रणतार्तिनाशक ! आपकी महिमा वेद और ब्रह्मा भी नहीं कह सकते, फिर मैं अधम और अज्ञानी बालक तो किस प्रकार आपकी महिमा को वर्णन कर सकता हूं। मैं आपको कृपासिन्धु और दीनवत्सल जान कर प्रार्थना करता हूं कि आपके इस अद्भुत् रूप से समस्त देवता भय मानते हैं। अतः आप कृपा करके इस समय उनका भय दूर कीजिये। भगवान् प्रसन्न होकर कहने लगे कि मैं तुझ पर बहुत प्रसन्न हुवा हूं। इस समय तुझे जो वर चाहिए मेरे से मांगले। तब प्रह्लाद जी कहने लगे कि:-

नाथ योनि सहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम्।
तेषु तेष्वचला भक्तिरच्युतास्तु सदात्वयि॥

हे नाथ ! जिन २ योनियों में मेरा गमन होय हे अच्युत ! कृपा करके मुझे यही वरदान दो कि उन सब योनियों में मेरी भक्ति आपके श्रीचरणों में हो।

प्रभु मैं सब विधि दास तुम्हारो॥
अपनी शरण से मोको,
इक पल मत न बिसारो।
यह विशाल विकराल रूप प्रभु,
दुष्ट दल दलन हारो॥
बसो रहै दिन रात हृदय में,
यह अभिलाष हमारो।
जब गज गह्यो ग्राहने जल में,
कोटि यतन कर हारो॥
जौ भर शुण्ड रही जल ऊपर,
तब हरि नाम पुकारो।
धाये वेग गरुड़ पर चढ़ कर,
सब दुःख द्वन्द्व निवारो॥
शालिग्राम भक्त से बढ़ कर,
और न कोई प्यारो।

इस प्रकार वर मांगने पर भगवान् तथास्तु कह कर, प्रह्लाद को राजगद्दी पर बिठा कर और अपने हाथ से राज तिलक करके अन्तर्ध्यान होगए।

"भूमा"

नाम महात्म्य

[ले० श्री० नवलकिशोर ब्रह्मचारी]

क्ति के प्रिय पाठकगण ! आज मैं आपकी सेवामें भगवन्नाम के विषय में कुछ लिखने का साहस करता हूं। समस्त संसार में कलियुग का राज्य बड़े विस्तारसे फैल रहा है, जीवन की अवधि कम होती जारही है, आध्यात्मिक, अधिदैविक और अधिभौतिक तीनों तापों की वृद्धि हो रही है। भोगोंकी प्रबल लालसाओं ने समस्त प्राणियोंको विवश और उन्मत्त बना रक्खा है। कुटुम्ब, परिवार, जाति और देशके नामपर होने वाली विविध भांतिकी लोह-मयी लीलाओं के तीव्र धारा प्रवाह में जगत् बह रहा है। मनुष्यत्व तक का भी विसर्जन कर दिया है। शास्त्रों के कथनानुसार धर्म का भी एक पाद ही अवशेष रह गया है। ऐसे विघ्नों से बचने के वास्ते और दुस्तर महार्णव से पार उतरने के वास्ते शास्त्र-कारों ने कहा है कि कलियुग में केवल नामका ही आधार है इसके स्मरण से ही मनुष्य पार उतर सकता है, मरुस्थल की भूमि सदृश शुष्क हृदयमें आनंद रसकी लहरें उत्पन्न करने के लिए, पाप पंक में धसे हुए जीवको निकालने के लिए, घोर तिमिराच्छन्न हृदया-काशमें प्रकाश का प्रदुर्भाव करने के लिए, विषयों में लोलुप चञ्चल चित्तमें अगाध शान्ति स्थापन करने के लिए, भयंकर नरक में प्रबल वेगसे जाते हुये जीव को सत्पथ पर चलाने के लिये, त्रिविध तापोंसे संतप्त प्राणियों को सुखमय और शीतल स्थान तक पहुंचाने के लिये यदि कोई उपाय है तो असुरारि वनविहारी श्रीमाधव मुरारी के नाम का जप कीर्तनादि ही है। शास्त्रकार भी कहते हैं:-

नराणां विषयान्धानां ममताकुलचेतसाम्।
एकमेव हरेर्नाम सर्वपाप विनाशनम् ॥

अर्थात् जो पुरुष विषय में अन्धे हो रहे हैं, मायाजाल में फंसे हुए हैं ऐसे जीवों के लिये एक मात्र हरि का कीर्तन ही सहाय है। जो मनुष्य भग-वान् का सदा भजन करता है, और उनके स्मरण में अपने कलेवर की सुधि तक भूल जाता है वह जगत् को पावन करता है। भगवान् कहते हैं:-

वाग्गद्गदा द्रवते यस्यचित्त,
रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च,
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥

जिसकी वाणी गद्गद् हो जाती है, हृदय द्रवित हो जाता है, जो वारम्वार ऊंचे स्वर से मेरा नाम लेकर पुकारता है, कभी रोता है, कभी हंसता है और कभी लज्जा छोड़ कर नाचता है तथा मेरा

गुण गान करता है ऐसा भक्तिमान् पुरुष अपने को पवित्र करता है इस में तो क्या सन्देह है परन्तु वह अपने दर्शन तथा भाषणादि से जगत् को भी पवित्र करता है। नामके प्रताप से पापी पुरुष भी श्रेष्ठ गति को पाता है वैशम्पायन संहिता में कहा है कि, सर्व धर्म त्यागी और सर्व पापों में निरत पुरुष भी यदि हरि नाम का स्मरण करे तो वह पापों से छूट जाता है। श्रीकृष्ण कीर्तन से चित्त रूपी दर्पण निर्मल हो जाता है, और विषय वासनाओं की महादावाग्नि के सन्ताप को कृष्ण कीर्तन शीतल करता है। जैसे चांद के उदय होने से कुमुदनी का कुमुद विकसित हो जाता है तद्वत् कृष्ण कीर्तन से आत्मा का पुण्य विकसित हो जाता है। शास्त्रकार कहते हैं कि नाम के सदृश स्वर्गापवर्गादि के सुख भी नहीं है। यथा-

न नाम सदृशं ज्ञानं न नाम सदृशं व्रतम्।
न नाम सदृशं ध्यानं न नाम सदृशं फलम्॥
नामैव परमा मुक्ति नामैव परमा गतिः।
नामैव परमा शांतिर्नामैव परमा स्थितिः॥

नाम के सदृश न ज्ञान है, न व्रत है, न ध्यान है और न फल है। नाम ही परम मुक्ति है, नाम ही परम गति है, नाम ही परम शान्ति है, और नाम ही परम निष्ठा है। काक भुशुण्ड जी भी नाम की महिमा वर्णन करते हुए गरुड़ जी से कहते हैं।

ऐसे बिनु हरि भजन खगेशा,
मिट ही न जीवन केर कलेशा।
शठ हठ वश बहु साधन करहीं,
भक्ति बिना भव सिन्धु न तरहिं॥

इत्यादि वचनों से यही सिद्ध होता है कि भगवान् के नाम का स्मरण, ध्यान, जप, कीर्तनादि ही कल्याण प्रद है। पापी से पापी प्राणी भी यदि मरण समय में हरि नाम का स्मरण करे तो वह भगवान् के पद को प्राप्त करता है। कृष्ण भगवान् भी श्रीभगवद्गीता में कहते हैं कि अन्त काल में जो मनुष्य मेरा स्मरण करताहुआ देह त्यागता है वह मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है इसमें संशय नहीं है। इस विषय में एक कथा है।

कान्य कुब्ज देश में अजामिल नाम का एक विप्र दासी का पति होगया था, सर्वथा दासी की संगति से दूषित होने के कारण अपने धर्म से च्युत होगया था जुआ खेलना, चोरी करना इत्यादि निन्दनीय कर्मों से कुटुम्ब का पालन किया करता था। इस कारण उस अजामिल से लोगों को बहुत कष्ट पहुंचा करता था। ऐसे निन्दनीय कर्मों के करते २ उसकी आयु का बहुत थोड़ा भाग शेष रह गया। एक दिन उसके घर एक महात्मा आये। उस साधु की परिचर्या उसने और उसकी स्त्री ने बहुत की, अन्त में महात्मा जी ने कहा कि हे अजामिल! अब तुम्हारे जो पुत्र हो उसका नारायण नाम रखना। यह कह कर महात्मा वहां से चले गये। उसके नव पुत्र दासी से पूर्व हो चुके थे, जब दशम पुत्र उत्पन्न हुआ तब उसका नाम महात्मा के कथनानुसार नारायण रक्खा। नारायण माता पिता को छोटा होने के कारण बहुत प्यारा था। अजामिल उसकी तोतली वाणी सुन कर और क्रीड़ा, कौतुक देख कर बहुत प्रसन्न होता था। उसको साथ बैठा कर भोजन करता और अनेक प्रकार से लाड लड़ाया करता। दैवयोग से उसकी मृत्यु का समय निकट आ गया। अजमिल ने अन्त समय में भी अपने नारायण पुत्र

में ही मन लगाया। उसने लम्बे २ रोम, विकराल मुख, और भयंकर आकृति वाले तीन यमदूत हाथ में फांस लिये आते देखे। उनको देख कर अजामिल बहुत व्याकुल हुआ और अपने परम प्यारे दशम पुत्र को भीनी वाणी से पुकारने लगा। हे नारायण! हे नारायण! मुझे इन यमदूतों से बचा। मृत्यु के समय अजामिल के मुख से नारायण का नाम सुनते ही भगवान् के पार्षद शीघ्र ही अजामिल के पास आगये और अजामिल की आत्मा को निकालते हुए यमदूतों को बलात्कार से निवारण करके कहा कि तुम इसको मत छूना। तब नवीन अवस्था वाले, चतुर्भुज धारे, धनुष, तूणीर, कृपाण, सम्भोर शंख, चक्र, गदा पद्म, हाथ में लिये हुए और कमल समान नेत्रों वाले विष्णु दूतों से यम के पार्षदों ने कोप में भर कर कहा कि, तुम कौन हो, किस के दूत हो, इस दुराचारी व पापी को यमपुर लेजाने से क्यों रोकते हो? तुम देवता हो अथवा उपदेवता या कौन हो? जब यमदूतों ने ऐसा कहा तब विष्णु के दूत मनमें सोचने लगे कि इनको दण्डादण्ड का ज्ञान नहीं है और अपने को यम का दूत बताते हैं। इसलिये विष्णु के पार्षद कुछ काल ठहर कर उनको मेघ समान गम्भीर वाणी में कहने लगे हे पाशधारी यमके किंकरो! हम तुम से धर्म विषयक प्रश्न करते हैं, बताओ कि धर्म का लक्षण और प्रमाण क्या है, और दण्ड प्राणियों को किस प्रकार दिया जाता है? यमदूत कहने लगे। वेद विहित कर्म को धर्म कहा है, और वेदों में निषिद्ध कर्म को अधर्म कहा है, वेद साक्षात् नारायण कहे हैं और स्वयम्भू नाम से सुने जाते हैं। यदि कोई कहे कि नारायण कौन है तो सुनो। जिन्होंने अपने स्वरूप में सात्विक, राजस, तामस गुणमय प्राणियों को शास्त्रत्वादि गुण, ब्राह्मणादि नाम, अध्ययनादि क्रिया का यथावत् विभाग किया है। वही नारायण है। नारायण ने ही अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा, देवता, सन्ध्या, दिन, रात, जल पृथ्वी, दिशा, धर्म, अधर्म यह सब बनाये हैं। ये सब मनुष्य के जो जैसा करता है) उस कर्म को जानते हैं और प्राणियों को अपराध के अनुसार दंड देते हैं। जैसे प्राणि धर्मका फल पाते हैं ऐसे ही दुष्कर्मों का दण्डभी भोगते हैं। हे देवगण! लिखे हुये धर्म के अनुसार जीवों को धर्माधर्म का ज्ञान होता है, परन्तु हमारे स्वामी धर्मराज अपनी पुरी में बैठे हुए ही समस्त प्राणियों के धर्माधर्म को जान लेते हैं। हे देव श्रेष्ठ! यह जीव अज्ञानी है, इसने काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, ईर्षादि छः वर्गों को नहीं जीता, जैसे रेशम का कीड़ा अपने पूरे हुए जाल में लिपट कर मर जाता है ऐसे ही यह जीव अपने किये हुए कर्मों से होकर ग्रसित मुग्ध हो जाता है, अर्थात निकलने का यत्न ही नहीं करता। प्रकृति के संग वश होने के कारण पुरुष की मति इस प्रकार उलट पुलट हो जाती है। परन्तु पुरुष उसी बुद्धि से ईश्वर की उपासना में चित्त को लगावे तो शीघ्र ही माया से अलग हो जाता है। हे विष्णु के पार्षदो. यह ब्राह्मण पहले सदाचारी, सुशील स्वभाव, जितेन्द्रिय, सत्यवादी मन्त्रज्ञाता, अहंकार रहित होकर गुरु अतिथि और वृद्धों की सेवा करने वाला था। एक दिन पिता की आज्ञानुसार वन से कन्द, मूल, फल समिधा आदि लेकर लौटते समय मदिरा पीये हुए कामी पुरुष को वेश्या के साथ रमण करते देखा। क्षण भर की भी कुसंगति से भी बड़ा अनर्थ हो जाता है। यह पवित्र ब्राह्मण काम वश हो गया और अपने धर्म कर्म का

परित्याग कर पाप रूप दासी की सेवा में अपने को लगादिया। पवित्र कुलोत्पन्ना, परम सुशीला, धर्म परायणा, पतिव्रता अपनी पत्नी को तिलाञ्जली देदी। इसने चोरी, अन्याय, झूठ ठग्गी से धन का संग्रह करके कुटुम्ब का पालन किया है। इसलिये यह अतिशय पापात्मा है। इसकी अधिक आयु भी पाप में ही बीती है पाप रूपा दासी का झूठा भोजन खाया है, और शास्त्र विधि का उलंघन करके स्वेच्छाचारी होकर विचरा है। इसने अपने किये हुए दुष्कर्मों का निवारण करने के लिये कोई प्रायश्चित्त भी नहीं किया है। इसलिये इसको हम दण्डपाणि यमराज के पास ले जायंगे। यह वहां दण्ड पाकर शुद्ध होगा। विष्णु के दूतोंने ऐसे वचन सुनकर और विस्मित होकर यमदूतों से कहा, अहो! बड़ा आश्चर्य है धर्मदर्शी पुरुषों की सभा को अधर्म ने छुआ है। सभा में दीर्घदर्शी पुरुष पाप रहित पुरुषों को वृथा दण्ड देते हैं, फिर अन्य पुरुषों की तो गणना ही कहां है। हे यमराज के पार्षदो! तुम धर्मका गूढ रहस्य सुनो।

यद्यपि इस अजामिलने अपने जन्म में कोटानुकोटि पाप किये हैं परन्तु "नारायण" नाम के उच्चारण करनेसे इसके पापों का प्रायश्चित्त ही नहीं किन्तु यह भगवान् के परमपद के स्थान का अधिकारी होगया है। क्योंकि शास्त्रकार कहते हैं कि चोर, मद्य पीने वाला, मित्र द्रोही, विश्वासी, ब्रह्मद्रोही, वेदद्रोही, गुरु की स्त्री से गमन करने वाला, स्त्री, गौ, और राजा का घातक ये सब महापातकी हैं। इन सब पापों का नारायण नाम ही श्रेष्ठ प्रायश्चित्त है। इसका यह अभिप्राय है कि नारायण के नाम से तद्रूपाकार होजाता है। अन्य प्रायश्चित्तादि से ऐसी शुद्धि नहीं होती जैसी नारायण के स्मरण से होती है। प्रायश्चित्त और व्रतादि के करने से पापों का छुटकारा होता है किन्तु पाप मार्ग में फिर मन दौड़ जाता है। इसलिये समस्त पापोंका क्षय करने वाला सच्चे हृदय से लिया हुआ हरिनाम ही उत्तम प्रायश्चित्त होता है।

यह अजामिल समस्त पापों का प्रायश्चित्त कर चुका इसको पाप करने वालों के पथ पर न ले जाओ इसके अत्यन्त पापों का क्षय होगया, क्योंकि इसने मृत्यु के समय भगवान् के नाम का ग्रहण किया था। हे यमदूतो! अधिक क्या कहूं। संकेत में, हांसी में, गति में, आलाप में, अथवा पराधीनता में लिया हुआ हरि का नाम सर्व पाप नाशक है। वृक्ष पर्वत गृह आदि ऊंचे स्थान से गिरता हुआ, अथवा अन्य व्याधि से ग्रसित हुआ जो अवश होकर हरि नामोच्चारण करता है उसको नरक की पीड़ा स्पर्श नहीं करती। मन्वादि महर्षियों ने छोटे बड़े पापों का जो प्रायश्चित्त कहा है उसकी अवधि है, परन्तु भगवान् के नाम की नहीं। यह सर्व पाप विमुक्त है तुम अपने धाम को जाओ और तुम्हें कुछ सन्देह होवे तो अपने स्वामी धर्मराज से निवारण करालेना। तदनन्तर वे यमदूत चले गये और यम की फांसी से छूट कर अजामिल सावधान हुआ विष्णु दूतोंको प्रणाम करके कुछ कहना ही चाहता था इतने में विष्णु दूत अन्तर्धान हो गये। अजामिल भी विष्णु दूतोंसे भगवान् के गुणोंको सुन कर भक्तिमान् हुआ और अपने किये कर्मोंका पश्चात्ताप किया। तब से पुत्रादि का समस्त बन्धन तोड़ कर गंगा तट पर हरिद्वार चला गया और एक देव मन्दिर में योगासन लगा कर योग मार्ग में स्थित हो सम्पूर्ण विषयों से चित्त हटा कर आत्मा में लगा दिया और अपनी शेष आयु भगवान् के स्मरण

कीर्तनादि में व्यतीत की है पाठकगण ! अजामिल का अपने नारायण नामवाले पुत्र के नाम लेने मात्र से ही जब कल्याण होगया पुनः तो जो श्रद्धा से भगवान् का भजन करते हैं उनकी तो गणना ही क्या ? नाम महिमा को बखान करते हुए एक कवि कहते हैं:-

नामके प्रभाव वाल्मीकि आदि ऋषी भये,
नामके प्रभाव कृष्ण नन्द घर आयो है।
नामके प्रभाव टेक राखी प्रह्लाद जी की,
नामके प्रभाव द्रोपद पट बढ़ायो है॥
नामके प्रभाव अजामिल से उतारे खल,
नामके प्रभाव बैकुण्ठ में पठायो है॥
सोई नाम पापन के काटने को सालगराम
वेद में भी तत्त्व रूप नाम को बतायो है।

हे प्रभो ! हमारा वह दिन कब होगा जब-

नयनं गलदश्रुधारया,
वदनं गद्गद रुद्धया गिरा।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा,
तव नाम ग्रहे भविष्यति॥

तुम्हारे नाम लेने से नेत्रों में आनन्दाश्रुधारा, कण्ठ में गद्गदस्वर, और समस्त शरीर में रोमाञ्च खड़े हो जांयगे।

गुरुके प्रति

[ले. मुरारी शर्मा "अभय"]

गुरुवर तुम सम को नहीं, जग में दीनदयाल।
दीन, पतित, पर कर दया, कीजे नाथ निहाल॥
कीजे नाथ निहाल, दीन को दास बनाओ।
दे चरणों का प्रेम, प्रेम का पन्थ बताओ॥
चरणन धूरि-शीश ले, गुरू भक्ति को उर-धर।
'अभय' शरण में पड़ा, अनुज सेवक तव गुरुवर॥

भगवद्भक्त रसखान

[ले० श्रीमती क्षमादेवी]

रसखान जी भगवान के परम भक्त हुए हैं। यह जन्म के मुसलमान थे। भगवान की भक्ति में सदा तल्लीन रहते थे। एक बार इनके गुरु ने इनको काबे की यात्रा करने की सलाह दी। इन्होंने अपने गुरु के साथ यात्रा के लिये प्रस्थान किया। घूमते घूमते वृन्दावन में आये। इनके भाग्य से वृन्दावन में आते ही पूर्व जन्म में बोये हुए बीजों में अंकुर उग आया, भगवत् कृपा से इनको साक्षात् श्रीव्रजचन्द्र महाराज के दर्शन हुए। शिर पर मोर मुकुट धारण किए हुए, गले में वन माला पहिरे हुए, हाथ में मुरली लिये हुए, पीत वसन धारी ने इनको दर्शन दिये। रसखान जी भगवान का मनोहर रूप देखते ही गद्गद् होगये, आखों से प्रेमाश्रु निकल पड़े और भगवान के ध्यान में मग्न होकर भूमि पर गिर पड़े, सब सुध बुध भूल गये। इनके गुरुने इनकी यह अवस्था देख कर बहुत ही आश्चर्य माना। इनको चैतन्य करने के लिये अनेक प्रकार के उपाय किये। रसखान जी तो उस समय भगवद्दर्शन करके इस जन्म के अमूल्य फल का लाभ कर रहे थे। वह तो भगवान से मनमें इस प्रकार प्रार्थना कर रहे थे:-

अहल्यापाषाणं प्रकृतिपशुरासीत कपिचमू।
गुहोभूच्चाण्डालस्त्रिनयनपि नीतं निजपदम् ॥
अहं चित्तेनाश्मा पशुरपि तवार्चाद्यकरणात्।
यामिश्चाण्डालः रघुवर नमामोद्धसिकिम् ॥

हे रघुवर! अहिल्या तो पाषाण की थी. कपिचमू प्रकृति से पशु थे, और गुह जो निषादों का राजा था वह चाण्डाल था, उनको आपने अपना परम पद प्राप्त कराया। प्रभो! मैं चित्त से तो पत्थर हूं, तुम्हारी पूजा नहीं करने से पशु हूं, और क्रिया रहित होने से चाण्डाल हूं, क्या आप मेरा उद्धार नहीं करोगे? भगवान उनकी इस प्रार्थना से प्रसन्न होते हैं और वर मांगने को कहते हैं, तो रसखान जी कहते हैं कि:-

कबहुंक खग मृगमीन, कबहुं मर्कट तनु धरके,
कबहुंक सुरनर असुर, नागमय आकृति करके।
नटवत लख चौरासी, स्वांग धरि २ मैं आयो,
हे त्रिभुवन के नाथ, रीझके कछु न पायो।
जो हो प्रसन्न तो देहु अब, मुक्ति दान मागूं विहंस
जो पै उदास तो कहहु इम, मतधर रे नर स्वांग अस

भगवान उनकी इस विनय से प्रसन्न होकर तथास्तु कहते हैं। तत्काल ही रसखान जी अपने गुरु से कहते हैं कि-

वा लकुटी अरु कमरिया पर,
राज तिहूं पुर को तजि डारौं।
आठहूं सिद्धि नवो निधि को,
सुख नन्द की गाय चराय बिसारौं॥
रसखान कबै इन नैनन सों,
ब्रजके बन बाग तडाग निहारौं।
कोटिन हूं कलधौत के धाम,
करील की कुञ्जन ऊपर वारौं॥

हे गुरु जी! मेरा तो कावा यहां ही आगया, अब मैं कहीं नहीं जाऊंगा, मैं तो ब्रज का हो चुका, ब्रज में ही ग्वाल बाल हो कर रहूंगा। यदि भगवान् मुझे नर देह देवें तो ब्रज में ग्वाल बाल बनावें, यदि पशु योनि दें तो नन्दबाबा के गाय बछड़े बनावें, यदि पक्षी बनावें तो ब्रज के वृक्षों का ही बनावें।

गुरु ने उनकी जब यह बार्ता सुनी तो महान् आश्चर्य हुवा, और विचारा कि इनको जबरदस्ती रथ में डाल कर ले चलें। तब रसखान जी वहां से भाग गये और वन में जा छिपे। उनके गुरु तो निराश होकर चले गये। वन में रसखान जी ने हजारों कवित्त भगवान की माहिमा के बनाये। उनमें कुछ हम पाठकों की भेट करते हैं।

द्रौपद औ गणिका गज गीध,
अजामिल सों कियो सो न निहारो।
गौतम गेहनी कैसी तरी,
प्रह्लाद को कैसो हरो दुःख भारो।
काहे को शोच करे रसखान,
कहा करि है यमराज विचारो।
कौन की शंक परी है जु,
माखन चाखन हारो है राखन हारो॥
वह सांवरो नन्द को छैल अली,
अब तो अति ही इतरान लगो।
नित घाटन बाटन कुंजन में,
मोहिं देखत ही नियरान लगो।
रसखान बखान कहा कहिये,
तक नैनन सों मुसकान लगो॥
तिरछी बरछी सम मारत है,
दृग बान का मन सूकान लगो॥

रसखान जी वैष्णव वस्त्र धारण करके बहुत सी माला पहिना करते थे। एक बार उनसे किसी ने पूछा कि इतनी माला पहिनने का क्या प्रयोजन है? एक दो ही बहुत हैं। तब रसखान जी ने उत्तर दिया कि जो पापी मनुष्य भी माला पहिन लेता है वह संसार समुद्र से पार हो जाता है। जो पुरुष छोटे पाषाण के समान हैं उनको तो एक दो माला ही बहुत हैं, मैं बड़े पाषाण के समान हूं, इसलिये मुझे अधिक माला पहरनी चाहियें।

रागा हरन्ति सततं प्रबलाः शरीरं,
कामादयोऽप्यनुदिनं प्रदहन्ति चित्तम्।
मृत्युश्च नृत्यति सदा कलयन्दिनानि,
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो॥

ध्रुवभक्त चरित्र

[ले० श्रीमती सूरजदेवी]

महात्मा मनु का नाम सब जानते हैं। उनके दो पुत्र थे, प्रियव्रत और उत्तानपाद ये दोनों प्रजा की रक्षा करने लगे। उत्तानपाद के दो रानियां थीं, एक सुनीती और दूसरी छोटी सुरुचि थी। राजा का छोटी रानी पर सुनीति की अपेक्षा अधिक प्रेम था। दोनों ही रानियों के एक २ पुत्र था। सुनीति के ध्रुव, और सुरुचि के उत्तम नाम का पुत्र था। एक दिन राजा उत्तानपाद अपने अन्तःपुर में बैठे हुये थे और अपने उत्तम पुत्र को प्यार कर रहे थे कि इतने ही में ध्रुव भी वहीं आ पहुंचे और अपने पिता की गोदी में बैठने लगे, पर दुर्भाग्य कहिये या सौभाग्य वश सुरुचि रानी (ध्रुव की मौसी) भी वहीं पर उपस्थित थी। सुरुचि तमक कर ध्रुव का हाथ पकड़ कर कहने लगी कि रे ध्रुव! तू राजा की गोदी में बैठने के योग्य नहीं है कारण कि तूने मेरे उदर में जन्म नहीं लिया है। हे पुत्र! यद्यपि तुम राजकुमार हो परन्तु राज्य सिंहासन पर बैठने योग्य नहीं हो। यदि तुम्हारी इच्छा सिंहासनारूढ होने की है तो भगवान् की तपस्या करो और मेरे उदर में जन्म लेओ। पाठकगण! रानी ने कठोर वचनों में यथार्थ बात कही, क्योंकि भगवान् की तपस्या विना ध्रुव राज्यासन पर नहीं बैठ सके थे, परन्तु धन्य है ध्रुवजी को जिन्होंने अपनी मौसी की बात से भी विशेष बात कर दिखलाई। रानी ने तो कहा था कि तपस्या करके मेरे उदर में जन्म लेकर सिंहासन पर बैठ सकते हो, परन्तु ध्रुव ने ईश्वराधना से जीते जी ही राज्याधिकार ग्रहण कर लिया। धन्य है ध्रुव को तथा धन्य है ईश्वर की महिमा को जिससे ध्रुव को अटल पदवी मिली। ध्रुव ने यह वचन तथा झिड़की जब मौसी से सुनी और पिता की दृष्टि में भी निरादर देखा तो रोते २ अपनी माता के पास पहुंचे। सुनीति ने ध्रुव को रोता देखा और पुरवासियों से सुरुचि की बात सुनी तो बेचारी को बहुत दुःख हुआ। अपने पुत्र को हृदय से लगा गोद में बैठा कर कहने लगी, हे पुत्र! इसमें किसी का कोई दोष नहीं है, जो जैसा करता है वैसा ही पाता है। जीव कर्म करने में स्वतंत्र तथा फल भोगने में परतंत्र है। मेरे और तेरे द्वारा भी किसी को पहिले दुःख हुआ है, नहीं तो ऐसा दुःख का पहाड़ मेरे ऊपर क्यों टूट कर गिरता? बेटा! तेरी मौसी ने ठीक ही कहा है। तूने मुझ अभागिनी के उदर में जन्म लिया है और मेरा ही दूध पीया है, मेरे साथ तुम भी भाग्यहीन हुये हो अतः मेरे लाल! अपनी मौसी के वचनों को मान और ईश्वराराधना कर, वे ही तेरे संकट को हरेंगे। जो सब लोकों का नाथ, राजा का राजा, अनाथों का नाथ,

प्रेमी-भक्त रसखान ।

"या लकुटी अरु कामरिया पै राज तिहुं-पुरको तजि डारौं" ।

Lakshmibilas Press, Calcutta.

दीनों का बन्धु है उसी की शरण को प्राप्त हो। पुत्र! जिन भक्त वत्सल भगवान् के चरणारविन्दों के पथ को योगीजन, मुमुक्षु जन खोजते हैं तुम भी उनका आश्रय लो। बिना कमल नयन भगवान् के तुम्हारा दुःख दूर करने वाला मुझको कोई नहीं दिखाई देता। हे वत्स! ब्रह्मादिक सब देवता जिनकी खोज में रहते हैं और लक्ष्मी जी कोमल कमल सदृश हाथ में कमल लिये जिनकी चाहना करती है, उनके चरणारविन्द की उपासना करो।

बालक ध्रुव अपनी माता के ऐसे वचनसुन कर वन में तप करके के लिये चल दिये। माता ने मोह वश रोका परन्तु ईश्वर के रंग में रंगे हुये ध्रुव जी मोह बन्धन को काट, माता को समझा बुझा कर चल दिये! पिता को जब मालूम हुआ तो उन्होंने कहा कि, कोई जाकर ध्रुव से कह दो वन में नहीं जाय, हम उसे एक गांव दे देंगे यदि एक गांव से नहीं माने तो पांच गांव की कह देना। राज्य कर्मचारी ने ध्रुव जी से राजा का संदेश कहा तो ध्रुवजी कहने लगे कि-

धन्य घड़ी शुभ आजकी धन्य राम का नाम।
नाम लेत ही देत हो आप पांच दस गांव॥
जापे पै सब कुछ मिले है मोकूं विश्वास।
राम बिना अब कौनकी करें पिता हम आस॥

राजा ने बहुत समझाया परन्तु ध्रुवजी न माने, ध्रुवजी ने विचारा कि, कल जो पिता मेरा निरादर करते थे आज वही पिता भगवद्भजन की मेरी इच्छा मात्र जान कर ही मुझे रखने का प्रयत्न करते हैं। राजा ने देखा ध्रुव जी जाने से नहीं रुकता है तो कहा कि हे पुत्र! राज्य पाट लेलो परन्तु वन को मत जाओ यह सुन ध्रुवजी ने कहा:-

धन्य राम के नाम को देन लगे सब राज।
जिस दिन दर्शन होयगा देंगे क्या तृनराज॥

ऐसा कह ध्रुव ने वन की राह ली। भगवान् के भजन के रंग में रंगे हुये ध्रुवजी खाना, पीना, वस्त्र तथा हिंसक जन्तुओं की पर्वाह नहीं करते हुये वन में चले जारहे हैं, रास्ते में हरि भक्त नारद जो वीणा बजाते मिले। ध्रुव ने उनको प्रणाम किया। नारद ने कहा:-

होय तेरा कल्याण अरे कौन का पुत्र है।
खोने अपनी जान चला अकेला जात तू।

ध्रुवजी ने कहा:-

उत्तानपाद का सुवनहूं ध्रुव हमारा नाम।
अब हम वहां को जात हैं जहां मिलेंगे राम॥

नारदजी ने यह सुन कर कहा कि हे पुत्र! तेरे वन को जाने का क्या कारण है? वन में शेर बघेरों का निवास है, तू अपने घर को लौट जा। तब ध्रुवजी ने अपनी विमाता का व्यवहार और माता का उपदेश सुना दिया! नारद जी ने कहा हे पुत्र! राम के दर्शन अति कठिन हैं, तेरी माता ने योंही बहका दिया है। ध्रुवजी ने कहा।

अब मैं फिरने का नहीं भाए रहें चाहे जांय।
राम भरोसे हम चले चाहे जो भख जाय॥

अहा कितना दृढ़ निश्चय है इसी निश्चय के भीतर भगवान् छुपे हुये बैठे हैं। जिन्होंने अपने हृदय में ऐसा दृढ़ निश्चय किया उन्होंने ही निर्गुण भगवान् के दर्शन पाये हैं। नारदजी अपने मन में कहते हैं कि अहो! क्षत्रियों को मान भंग का कितना दुःख होता है, यद्यपि यह बालक है तो भी विमाता के दुर्वाक्य नहीं सहे गये। नारदजी ने कहा कि हे पुत्र!

बालकों को इतना मान अपमान का खयाल नहीं करना चाहिये और यदि कुछ खयाल भी करते हो तो स्वकर्मों का फल समझो, जो कुछ परमात्मा देता है उसी में सन्तोष मानना चाहिये, यथाः-

"राम ज्यूं राखे त्यूं रहिये"

तुम बालक हो, वन में नहीं रह सकते, कोई शेर बघेरा खा जायगा। तुम्हारी माता रोती हुई, रह जायगी अतः तुम अपने घर जाओ। हठ छोड़ दो, जब तेरी वृद्धावस्था आवे तब भजन कर लेना। नारद-जी के वचन सुन ध्रुवजी ने कहा, कर्मों के अनुसार अभागे मनुष्यों के लिये ही ईश्वर ने यह शान्ति तथा सुख का मार्ग बनाया है। यद्यपि मैं मतिमन्द अभागा हूं और ईश्वर दर्शन से रहित हूं परन्तु फिर भी विमाता के वाक्य सहन नहीं होते। आपके मधुर वचन भी इस घोर क्षत्रिय स्वभाव वाले मुझ अविनीत के हृदय में नहीं ठहरते हैं। बालक होने से कोई जन्तु चट कर जायगा सो नारदजी क्या जीव जन्तु ईश्वर से भी बलवान् हैं, जो वे उसके शरणागत को खा जायेंगे ? हे नारद जी ! लोक में यह प्रसिद्ध है कि एक बकरी ने शेर के खोज दिखा कर कि मैं उससे रक्षित हूं, अन्यजीव जन्तुओं से अपनी रक्षा करली, फिर मैं भला ईश्वर नाम रूपी खोज (चरण चिन्ह) का आश्रय लेकर जीव जन्तुओं से रक्षित नहीं हो सकूंगा क्या ? नारदजी ने भय कठिनता दिखला कर जान लिया कि यह भगवद्भक्त है इसके हृदय में प्रेम भक्ति है, उसको भगवान् का ध्यान और नाम का जप बतला दिया और आशीर्वाद दिया कि "तुझे ईश्वर के दर्शन हों" और यमुना तट पर भेज दिया। यमुना के किनारे जाकर मन इन्द्रियों का निग्रह कर ध्रुवजी भजन में लवलीन हो गये। नारद जी राजा उत्तानपाद के पास आये। राजा ने ऋषि का यथोचित सत्कार किया फिर दोनों अपने२ आसन पर बैठे। नारदजी कहने लगे कि हे राजन् ! आपका चित्त खिन्न क्यों हो रहा है, क्या आपके धर्म, अर्थ में कुछ विघ्न हुआ है या अन्य कोई कारण है। राजा ने कहाः-हे ऋषिराज ! मैंने अज्ञान वश स्त्री के मोह से अपने छोटे सुकुमार बच्चे को निकाल दिया है, अब मैं बैठा २ पछताता हूं कि मेरा नन्हा ध्रुव कहीं भूखा, थका, मांदा सो जायगा और कोई हिंस्रक जन्तु उसको खा जायगा। हाय ! मैं बड़ा निर्दयी पिता हूं कि जिसने अपने बालक को आपही मौत के मुख में ढकेल दिया। नारद जी बोले कि हे राजन् ! आपने अपने उस छोटे पुत्र ध्रुव की महिमा नहीं जानी वह बड़ा ऐश्वर्यशाली तथा प्रतापी है, उसके ईश्वर रक्षक हैं तुम शोच मत करो क्योंकि कहा हैः-

जिसका राम रक्षक उसका कौन भक्षक ॥
तुलसी बिरवा बाग में सींचत ही कुम्हलाय ।
राम भरोसे जो रहे पर्वत पर लहराय ॥

राजन् । घबराइये नहीं लोकपालों से भी न होने वाला कार्य तुम्हारा यशस्वी पुत्र करके शीघ्र ही आपके पास आवेगा। राजा ने नारद जी का यह वचन सुनकर कुछ धैर्य तो धारण किया परन्तु शोच रहित नहीं हुये। उन्हें उस समय राज लक्ष्मी का सुख किंचिन्मात्र भी सुख नहीं दे सका। ध्रुवजी ने देवर्षि की आज्ञानुसार यमुना जी पर आसन लगा सावधान चित्त से तीन २ रात्री के अन्तर पर कैथ और बेरों का आहार करके एक माह बिताया और

अत्यन्त प्रीति के सहित श्रीकृष्ण चन्द आनन्द कन्द वृन्दावन विहारी के चरण कमलों में ध्यान लगाया। फिर छठे २ दिन के अन्तर पर सूखे पत्तों को खाकर हरि भजन किया। अधिक क्या ध्रुवजी तपस्या करते २ निराहार रहने लगे और वायु भक्षण करके भगवान् में निरन्तर लौ लगा कर ध्यानावस्थित हुये। पांच मास पीछे उन्होंने वायु भी रोकली और वायु पंचभूत इन्द्रिय निवासी मन को निग्रह करके ध्रुव एक कृष्ण ही कृष्ण को सर्वत्र देखने लगे। जब ईश्वर में उनकी आत्मा मिल गई तो फिर उन्होंने तत्वों का निरोध किया तब तो त्रिलोकी कांप उठी। जब वह राजकुमार एक चरण से खड़ा हुआ तो पृथ्वी दबने लगी। वायु के रोकने से तीनों लोक घबराये और उस कारण को न जान कर देवता श्रीभगवान् के पास जाकर बोले कि, हे भगवन्! हम नहीं जानते क्या कारण है कि हमारे सबके प्राण रुक गये हैं? हे शरणागतवत्सल! हम आपकी शरण हैं, इस महान् संकट से हमारा उद्धार करिये। श्रीभगवान् बोले कि, हे देवताओ! घबराओ नहीं यह कारण एक बालक की उपासना से हुआ है मैं अभी जाकर बालक को वरदान देकर तुम्हारा संकट छुड़वाता हूं। उसने ध्यान लगा कर अपनी और मेरी आत्मा को एक कर लिया है। तुम डरो नहीं अपने २ स्थान को चले जाओ। मैं भक्त के पास जाऊंगा क्योंकि भक्त मेरे जीवन प्राण हैं। यथा:-

भक्त हैं मेरे जीवन प्रान ॥ टेक ॥
जब २ भीर परत भक्तन पर,
धरत हमारो ध्यान।
इसी समय सुधि लेत गरुड़ चढ़,
त्याग खान अरु पान ॥
भक्त हेत अवतार लेत हूं,
भूमण्डल में आन।
मैं भक्तन को भक्त हमारे,
करत सदा सन्मान ॥ २ ॥
जो कोई मेरी शरण लेत है,
मुझको अपना जान।
मेरे हृदय बसत सो निशि दिन,
सज्जन सज्जन सुजान ॥ ३ ॥
मैं अपने पूरण भक्तों को,
देत हृदय अस्थान।
सालिगराम नाम से बढ़ कर,
और कौन सो दान ॥ ४ ॥

देवता प्रसन्न होकर सुरपुर को चले गये और श्रीभगवान् गरुड़ पर चढ कर मधुवन में आये। ध्रुव नेत्र बन्द किये अपने ध्यान में मग्न था, जब उसे हृदय कमल में चपलासम चमकीली चतुर्भुज भगवान् की मूर्ति नहीं दीखी तो एकाएकी चौंक उठे और नेत्र खोल कर क्या देखते हैं कि वह मन मोहिनी सुन्दर सुहावनी मूर्ति नेत्रों के सन्मुख विराजमान हैं। उनका दर्शन कर अत्यन्त भक्ति भाव से ध्रुवजी ने साष्टांग प्रणाम किया और प्रेम में इतने भर गये कि कण्ठ गद्गद् हो गया, मुख से स्तुति का शब्द भी नहीं निकला, मानो ध्रुवजी बाह्य दर्शन पाकर भी भीतर ध्यान में स्तुति कर रहे हैं। नेत्रों से आसुओं की झड़ी लग गई, मानो आसू रूपी मुक्तामाला श्री देव के चरणों में समर्पण कर रहे हैं। बालक की ऐसी स्तुति पूजा देख कर भगवान् ने दिव्यवाणी दी जिससे वे अपने हृदय के उद्गार प्रकट करते हुये

महिमा वर्णन करने लगे। हे देवाधिदेव! सुप्त हुई मेरी वाणी को और हाथ पांव आदि को चेतना देने वाले आपको नमस्कार है।

एकस्त्वमेव भगवन्निदमात्मशक्त्या,
मायाख्ययोरुगुणया महदाद्यशेषम्।
सृष्ट्वाऽनुविश्य पुरुषस्तदसद्गुणेषु,
नानेवदारुषु विभावसु वद्विभासि॥

हे नाथ! यद्यपि तुम एक हो, तदपि जैसे काष्ठ में अग्नि नाना रूप होकर प्रकाश करती है वैसे ही आपने अपनी माया रूप अनेक गुण वाली शक्ति से महदादिक सब यह जगत् रच कर पीछे उसमें प्रविष्ट होकर इस माया के असत् गुणों में नाना रूप होकर प्रकाशे हो।

हे नाथ! ऐसी कृपा करो कि आपकी निरंतर भक्ति बनी रहे और आपके भक्तों का सर्वदा सत्संग बना रहे। हे भगवन! तुम्हारे चरण कमल के भजन करने वाले के पुरुषार्थ सत्य होते हैं, आप नवप्रसूता गौ की भांति वत्सको दूध पिला हिंस्रक जन्तुओं से बचाते हो। हे प्रभो. अशरण शरण! दीनबन्धो! दया करके आपके चरण कमलों में प्रेम भक्ति बनी रहे यह आशीर्वाद दीजिये। भक्तअनुरागी भक्तवत्सल आनन्द कन्द भगवान ने आनन्दित होकर कहा, हे पुत्र! तेरा मंगल हो तेरे सदृश पद आज से पूर्व किसी को नहीं मिला। त्रिलोकी के लय होने पर भी लय नहीं होने वाला, धर्म अग्नि, कश्यप, शुक्र, सप्तऋषि, तारा मण्डल सहित जिस की परिक्रमा करते हैं वह ध्रुव पद तुझे दिया। अब तू अपने नगर को जा तेरा पिता तुझे राज्य देकर वन को चला जायगा, तू धर्म पूर्वक राज्य करता हुआ छत्तीस सहस्र वर्ष पर्यन्त भूमंडल की रक्षा करेगा। तेरा उत्तम भाई शिकार करने जायगा, वहां मारा जायगा और उसकी माता उसे ढूंढने जायगी तब वह भी मारी जायगी। तू इन्द्र सम विभूति को भोग कर अन्तमें निश्चल ध्रुव पद को पायेगा। ऐसा कह भगवान गरुड़ सहित अन्तर्ध्यान हो गये। ध्रुवजी भगवद्विरह के दुःख से दुःखित हुए अपने नगरको चल दिए। नगर के निकट जब ध्रुव आया तब राजाने सुना कि ध्रुव आता है परन्तु विश्वास नहीं आया। फिर नारदजी के वाक्य का स्मरण करके समाचार लाने वाले दूतोंको पुरस्कार दिया और आप ब्राह्मण, मंत्री, तथा बन्धु जनों को साथ ले बाजा बजवाते हुये, ब्राह्मणों से वेद ध्वनि करवाते हुये अत्यन्त समारोह के साथ पुर से चला। दोनों रानियां भी गईं। समीप में ध्रुव को आता देख कर राजा रथ से उतर भगवान के दर्शन से कान्ति जिसकी बढ़ गई है उससे भुजा पसार कर मिले। ध्रुवने पिताके चरणों में प्रणाम किया। राजा ने प्रसन्नता पूर्वक उसे आशीर्वाद दिया। फिर ध्रुवने विमाता के चरणों में प्रणाम किया, उसने भी चरणों पर से ध्रुव को उठाकर आशीर्वाद दिया कि हे पुत्र युग २ जीओ। धन्य ईश्वर तेरी महिमा जो विमाता एक दिन गोद में बैठने पर झिड़कती थी वही आज तुम्हारी कृपा दृष्टि होने पर आशीर्वाद देती है। हे भगवन! जिसके तुम सहायक हो जाते हो उसके शत्रु भी मित्र हो जाते हैं।

सुनीति अपने पुत्र से मिल कर आनन्दित हुई। सबने सुनीति तथा ध्रुव की प्रशंसा की और धन्य २ तथा जय २ शब्दों से महल को गुंजा

दिया। इस भांति रहते २ राजाने मंत्रियों से सलाह ली कि मैं वृद्ध होगया हूं अब बनको जाऊंगा। राज्यभार यद्यपि उत्तम का है परन्तु ध्रुव योग्य है, अतः ध्रुवको दूंगा। मंत्रियों ने एकस्वर से कहा महाराज ! राज्य ध्रुव को ही दीजिये। तदनन्तर ध्रुव को राज्य दे कर राजा बन को चला गया। उत्तम कुमार एक बार हिमालय पर आखेट करने गया और वहीं एक यक्ष के हाथ से मारा गया। विमाता की भी यही गति हुई। ध्रुवजी ने जब यह सुना कि किसी यक्ष ने मेरे भाई को मारा है तो बड़ा क्रोध कर यक्षों पर चढ़ाई करदी। १३००० यक्षों ने एक ही बार ध्रुवजी पर प्रहार किये। एक बार तो सिद्ध मुनि सब डर गये परन्तु ध्रुवजी थोड़ी देर में उस झुंड में से ऐसे प्रगट हुये जैसे कुहर में से सूर्य प्रकट होता है और यक्षों को मार भगाया। यक्षों के भाग जाने पर ध्रुवजी अपने सारथी से विचार कर ही रहे थे कि इनकी नगरीमें प्रवेश करना चाहिये या नहीं उसी समय सूतने कहा राजन् ! ये बड़े मायावी होते हैं अतः नगरी में प्रवेश मत करिये। इतने में ही पहाड़ पत्थर सर्प, भूत, बैतालादि से पृथ्वी तथा आकाश भर गया ! असुरों ने जब यह माया रचकर ध्रुवको घबरा दिया, तब ऋषि मुनियोंने ध्रुवसे कहा कि शारंग धनुषधारी, भृत्यों के भय हरनहारे आनन्द कन्द का ध्यान लगाओ वे शत्रुओं का नाश करेंगे। वे ही भक्त भयहारी हैं।

ऋषियों के मुख से भगवान् की भक्तवत्सलता सुन कर नारायण को स्मरण करके ध्रुव ने नारायण शस्त्र छोड़ा जिससे सारी माया छिन्न भिन्न हो गई। फिर शस्त्रों से यक्षों को मारने लगे, तब मनुजी आये और उन्होंने समझाया कि पुत्र भगवद्भक्तों का काम हिंसा करना नहीं है। एक भाईके बदले इतने निरपराध यक्षोंका नाश करना उचित नहीं। तब ध्रुवजी उनके चरणोंमें गिर पड़े और भगवान् की भक्ति का वर मांगा। पश्चात् ध्रुव अपनी नगरी में जाकर ३६००० वर्ष न्याय पूर्वक राज्य करके परम पदवी को प्राप्त हुये। ध्रुवजी को वह अटल पदवी मिली जो आज तक और किसी ने नहीं पाई। यह भगवान् की भक्ति का ही प्रताप है जिससे ५ वर्ष के अबोध बालक ने तपस्या करके ऋषि मुनियों में दुर्लभ पदवी पाई। पाठक गण ! भगवान् के लिये अपने भक्त को देने को कुछ भी अदेय नहीं है। मनुष्य शरीर पाकर ऐसे दाता को विस्मरण कर देना ही सब से अवनति तथा दुःख का कारण है। जिस परमात्मा के नामने अनेक पतितों को पावन किया है, मनुष्य मूर्खता में फंसकर उसको त्यागकर सांसारिक, क्षणिक और नाशवान् तत्वों की खोजमें अपने जीवन को व्यतीत करते हैं। इन भक्तराज ध्रुव के आख्यानसे भगवान की दयालुता टपक रही है। ध्रुवजी ने अनाहत होकर भगवत्स्मरण किया परन्तु ईश्वर ने उसे मनोवांछित लौकिक पदार्थ भी दिये और पारलौकिक में भी उत्तमसे उत्तम अटल पदवी दी। मातायें अपने छोटे २ बच्चों को शिक्षा रूप में ऐसी ही भक्ति की कहानियां सुनाया करें तो आश्चर्य नहीं कि फिर भी ध्रुवजी का अवतार हो।

प्रेम भीख ही भर देना

[ले० श्रीमती व्रजकुमारी]

हे भक्ति मातः ! हे जननी !
विश्व पालिनी ! हे अम्बे !
भय निवारिणी ! पतित पावनी !
विश्व तारिणी ! हे जगदम्बे ॥ १ ॥

क्लेश कर्तरि ! मुक्ति दायिनी,
कर दो अपना शुभ्र प्रकाश ।
जीवन में कर दो वह अब,
प्रेममयी ज्योति का विकाश ॥२॥

विश्व वीणा के व्योम मंडल में,
बजा दो प्रेम तंत्री झंकार ।
शुष्क हृदय में पुण्य प्रेम की,
बहा दो रसमयी पावन धार ॥३॥

सांत्वना दाता जीवन की,
अन्तस्तल की तुम मुदिता हो ।
मणव प्रणय की पथ प्रदर्शिका,
जाड्य तमोघ्नी तुम सविता हो ॥४॥

श्रान्त क्लांत अनुतप्त हृदय में,
मां ! शीतलता सरसा देना ।
अपने पद की रेणु कण से,
निर्मल हृदय बना देना ॥ ५ ॥

विश्वेश प्रति मम उर में,
हे ! प्रेम प्रदीप जगा देना ।
इस अकिंचना की झोली में,
प्रेम भीख ही भर देना ॥ ६ ॥

सूरदास जी

[ले० श्रीमती शकुन्तला देवी "सूरी" विदुषी]

भक्तवर सूरदास जी के वंशनिर्णय में कई एक मत हैं। सरदार कवि के मतानुसार यह भक्तवर चन्दबरदायी के पूर्व पुरुष सिद्ध होते हैं, किन्तु उनसे अधिक प्रमाण मानने योग्य भक्तमाल तथा चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता है। अस्तु इन दो ग्रंथों के अनुसार यह सारस्वत ब्राह्मण थे इनके पिता का नाम रामदास था। इनका जन्म १५४० में साहिग्राम जो देहली के निकट है एक निर्धन कुल में हुआ था।

कहते हैं कि यह पहिले चिन्तामणी नाम की एक वेश्या में बहुत प्रीति रखते थे। यह अपने घरका रहना छोड़ कर नित्य उसके घर पर जाया करते थे। एक दिन पिता के श्राद्ध में इनको बहुत समय लग गया, फिर रात में ही यह वेश्या के स्थान को चल दिये, रास्ते में नदी पड़ती थी, दैवयोग से नदी भी उस दिन चढी हुई थी। यह देख कर इन्हें दुःख हुवा, अपनी देह का कुछ भी खयाल न करके वेश्या के प्रेम में नदी में कूद पड़े। नदी में दैवयोग से कोई मृतक शरीर बहा जाता था, इन्होंने समझा कि प्यारी ने नौका भेजी है, उस पर चढ़कर किनारे पर पहुंचे, वहां से पड़ते गिरते वेश्या के द्वार पर आये तो दर्वाजा बन्द था। यह भीतर जाने का उपाय करने लगे, संयोग से द्वार पर एक सांप लटक रहा था, इन्होंने समझा कि प्यारी ने ऊपर से रस्सी लटकाई है। इसके सहारे से छत पर चढ़ कर वेश्या के पास पहुंचे, वेश्या ने कहा कि आज ऐसी अन्धेरी रात्रि में कैसे आना हुवा, इन्होंने कहा कि तुमने तो मेरे आने के लिये नदी पर नौका भेजी थी और द्वार पर रस्सी लटकाई थी न। वेश्या को सुन कर बड़ा आश्चर्य हुवा दीपक से देखा तो मालूम हुवा कि द्वार पर तो सांप लटक रहा है, और नदी वाली नौका किसी का शव है। वैश्या ने कहा कि अरे मूर्ख ! जैसे मेरे मांस अस्थि के शरीर पर तैंने मन लगाया है, इसी प्रकार तू श्याम सुन्दर जो कि सब शोभा का धाम है उनमें चित्त को क्यों नहीं लगाता जिससे संसार समुद्र से पार हो जाय ? वेश्या के वचनों से सूरदास जी के नेत्र खुल गये और कृष्ण की भक्ति उदय हुई। तुरन्त ही वृन्दावन को प्रस्थान किया। मार्गमें एक ग्राम आया, वहां कूए पर एक सुन्दर स्त्री को देख कर उसके पीछे हो लिये। वह स्त्री जब घर में चली गई तो द्वार पर ही बैठे रहे, स्त्री का पति भगवद्भक्त था, द्वार पर अतिथि को बैठे देख कर अपने घर ले गया, स्त्री को आज्ञा दी कि इनकी खूब सेवा करना, और जो कुछ यह कहैं सो करना। पति की आज्ञा से स्त्री सुंदर २ भोजन इनके पास ले गई। सूरदास जी ने जब उनको

ऐसी शुद्ध भक्ति देखी तो अपने ऊपर बड़ी ग्लानी आई और नेत्रों का दोष समझकर सुई से दोनों नेत्र फोड़ लिये और दुखित नेत्रों से ही वहांसे प्रस्थान किया। नेत्र हीन तो हो ही गये थे, मार्ग में एक कूप पड़ता था, वह उसमें गिर गये ६ दिन तक भूखे प्यासे उसी में पड़े रहे, सातवें दिन गोप वेश धारी यदुपति नाथ ने इनको कूए से बाहर निकाला और भोजन खिलाया। सूरदास जी में सुन्दरता के विवेचन की शक्ति बहुत थी, उनके कर स्पर्श से तुरन्त जान गये कि यह तो साक्षात् भगवान हैं। भगवान् उनको सीधा वृन्दावन का मार्ग बता कर जाने लगे तो सूरदास जी ने बहुत जोर से उनका हाथ पकड़ लिया, जब भगवान् हाथ छुड़ा कर चल दिये तो सूरदास ने कहा

बांह छुड़ाये जात हो निबल जानि के मोहि।
हिरदे सो जब जाईयो मरद बदोंगो तोहि॥

तत्क्षण इनको आन्तरिक ज्योति का ऐसा आभास हुआ कि इनकी संसारी चिन्ताएं सब उस आलोक में विलीन हो गई। उसी दिन से वह "कृष्ण ही कृष्ण" की अविरल ध्वनि लगाते हुए प्रेमोन्माद से व्रज मण्डल में विचरने लगे।

सूरदास जी गऊघाट पर जो दिल्ली और आगरे के मध्य में है रहते थे। वहीं पर एक समय महाप्रभु वल्लभाचार्य पधारे। सूरदास जी आचार्य के दर्शनार्थ वहां गये, आचार्य जी इनकी अटल भक्ति तथा श्रद्धा देख अति प्रसन्न हुए और उन्हें कुछ हरि कीर्तन करने को कहा, उस समय सूरदास जी ने यह पद गाया।

प्रभु हौं सब पतितन को टीको॥ टेक॥
और पतित सब दिवस चार के,
हौं तो जन्मत ही को॥ १॥
बधिक अजामिल गणिका तारी,
और पूतना ही को॥ २॥
कोऊन समरथ अघ करबे को,
खैंच कहत हू लीको॥ ३॥
मनियत सूरदास पतितन में,
हम ते को है नीको॥ ४॥

ऐसे दीनता भरे पद सुन कर आचार्य जी को इन पर बड़ी दया आई और इन्हें भगवान की भक्ति का उपदेश दिया।

कहते हैं कि दिल्लीश्वर ने एकबार आपको बुलाया और अपना यश वर्णन करने को कहा। इस पर सूरदास जी ने सम्राट् के आगे यह पद गाया:—

मनारे तू करि माधव सौं प्रीति।
काम क्रोध मद लोभ मोह तू छांडि सबै बिपरीति
भौंरा भोगी बन भ्रमे मोद न माने ताप।
सब कुसमिनी मिली रस करैं कमल बन्धावै आप
कहं जानो कहवां मुवो ऐसे कुमति कुमीच।
हरि सौं हेतु विचारि के सुख चाहत है नीच॥

गोलोक में रहते २ ही सूरदास जी वृद्धावस्था को प्राप्त हुए। अन्त समय में परसोली चले गये। जब आचार्य को सूरदास जी के अन्त समय का ज्ञान हुआ तब आचार्य ने अपने शिष्यों से कहा भैया! "भक्ति मार्ग का अवलम्ब स्वरूप जहाज डूबा चाहता है। जिसे जो उपदेश लेना वह शीघ्र वहां पहुंचे"। पश्चात् बहुत से शिष्यों सहित आचार्य परसोली पहुंचे। इन दोनों गुरु शिष्य में हार्दिक स्नेह था। दोनों को मिल कर अपार आनन्द हुआ। सूरदासजी के नेत्रों से प्रेमाश्रुधारा का अविरल

भक्त हरिदास जी

लूटन को हरिनाम धन, आई पातुरी पास।
नाम सुनत सो लुट गई, छूटो यम की त्रास॥

Bhakti Press Rewari.

प्रवाह बह रहा था और कृष्ण भक्ति के पद गा रहे थे। गोसांई जी इनका प्रेम तथा भक्ति को देख मुग्ध हो रहे थे। इतने में एक शिष्य ने कहा "सूरदास जी आपने सवालाख पद तो रचे पर आपने गुरु पर एक भी पद न लिखा इसका क्या कारण है। इस पर सूरदासजी ने कहा भैया मैंने समस्त सूरसागर में ही गुरुदेव का कीर्तन किया है, क्या गुरु और गोविंद में कुछ अन्तर है ? फिर भी आपने इस समय एक पद कहा

भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो ॥
श्रीवल्लभ नखचंद छटा बिन,
सब जग मांझ अन्धेरो ॥
साधन और नहीं या कलि में,
जासों होत निवेरो ।
सूर कहा कहि दुविध आंधरो,
बिना मोल को चेरो ॥

यह पद गाकर सूरदास जी को शरीर का भाव न रहा, नेत्रों से अश्रुधारा निकलने लगी।

सूरदास जी की कविता इतनी हृदयग्राही, अनूठी और मौलिक है कि उसे बारम्बार पढ़ने पर भी चित्त उकताता नहीं, बल्कि पढ़ने की इच्छा बनी रहती है और बिना कण्ठस्थ किये कल नहीं पड़ती। सूरदास जी के बनाये पांच ग्रंथ कहे जाते हैं सूर सागर, सूर-सारवली, साहित्य लहरी (द्रष्ट कूट) नल दमयन्ती और व्यलोहो, नलदमयन्ती। और व्यालोहो यह अप्राप्य हैं।

सूरदास जी संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित, समस्त पुराणों के ज्ञाता और ब्रजभाषा के तो भास्कर ही थे। महाभारत और पुराणों के गूढ़तम रहस्य आप पर प्रकट थे। सूरदास जी के रूपक और उपमाएं बहुत ही उत्कृष्ट हैं।

भक्त हरिदास जी

] ले० श्री० हीरानन्द ब्रह्मचारी]

हरिदास जी का जन्म नदिया जिले के मध्य बूड़न ग्राम में हुआ था। बाप का नाम सुमति और माता का नाम गौरी देवी था, यह जाति से ठाकुरथे। हरिदास जिस समय ६ वर्ष के थे, उस समय उनके पिता का देहान्त हुआ, माता भी अपने पति के साथ सती हो गई। निराश्रय बालक यवनों के हाथ में पड़ कर मुसलान कर लिया गया। बाल्यावस्था से ही हरिदास मुसलमान धर्मग्रंथ अनुराग पूर्वक पढ़ा करते थे। जब हरिदास ने अद्वैतजी के धर्मानुराग का समाचार सुना, तो शान्तिपुर गये, वहां जाकर इन्होंने अद्वैत को समाधिस्थित देखा। हरिदास,

अद्वैत जी को ध्यानमग्न देख स्वयं ध्यान मग्न होने की क्षमता प्राप्त करने के लिये व्याकुल हुए और अद्वैतजी के ध्यान भंग की प्रतीक्षा करने लगे। जब अद्वैतजी का ध्यान भंग हुआ, तब हरिदास ने उनसे दीक्षा लेने की प्रार्थना की, प्रथम तो अद्वैतजी ने हरिदास को म्लेच्छ समझ अपना शिष्य बनाना अस्वीकार किया, किन्तु उनकी सरलता, विनय एवं व्याकुलता देख, हरिदास को हरिनाम की दीक्षा दी। हरिदास भक्ति परायण हो सदा हरि नाम जपने लगे। जप करने के लिये निर्जन स्थान में कुनिया ग्राम के पास उन्होंने कुटी बनवाई, वे कुटी में बैठ कर जप करने लगे।

हरिदास मुसलमानी धर्म को छोड़, हिन्दुओं की तरह हरिनाम जपने लगा। यह समाचार जब स्थानीय काजी को मालुम हुआ तब वह बहुत अप्रसन्न हुआ और उनको मुसलमानी धर्म में फिर लाने के लिये प्रयत्न करने लगा परन्तु उनके सब यत्न विफल हुए। तब हरिदास को दण्ड दिलाने के लिये काजी ने नवाब के पास भेजा, नवाब बहादुर ने काजी के परामर्श से हरिदास के बेत लगाये जाने की आज्ञा दी। बेतों की मार से हरिदास अचेत होकर गिर पड़े। जब सबने समझा की हरिदास मर गया, तब काजी ने नौकरों को कब्र में गाड़ने की आज्ञा दी। जब हरिदास को गाड़ने के लिये नौकर उठाकर कब्रिस्तान में ले गये तब हरिदास सचेत हुए। यह हाल नौकरों ने काजी से जाकर कहा। जीवित मनुष्य को कब्र में गड़वाना काजी ने धर्म विरुद्ध समझ कर हरिदास को गंगा में डबोदिया गया, वह बहते २ दैव योग से तट पर जा लगे और काजी के डर से सप्त ग्राम के अन्तर्गत चांदपुर ग्राम में बलरामाचार्य के घर में जा छिपे। आचार्य बड़े हरि भक्त थे। उन्होंने भगवद्भक्त हरिदास को बड़ी प्रीतिसे अपने घर रक्खा। उस समय मुसलमान बहुत अपवित्र माने जाते थे, यदि कोई मुसलमान हिन्दू के घर में चला जाता तो हिन्दू सब सामग्री उठा कर फैंक देता, यदि कोई हिन्दू मुसलमान को छू लेता, तो पतित हो जाता था। सामाजिक नियमों के ऐसे कठिन होने पर भी बलरामाचार्य ने यवन हरिदास को अपने घर में रखा। हरिदास ने भक्तावास रूप अभेद्य दुर्ग में आश्रय ग्रहण कर मन भर कर हरि नाम जपा। कभी तो प्रेम रस में भरने के कारण हरीदास के दोनों नेत्रों से गंगा यमुना की धार की तरह अविरल अश्रु प्रवाहित होता था और कभी वे उन्मत्त की तरह नाचने लगते थे। हरिदास की ऐसी दशा देख गांव वाले कहने लगे कि बलरामाचार्य ने एक पागल पाल रखा है। उनही दिनों नवाब के तहसीलदार गोवरधन दास का पुत्र रघुनाथ दास बलरामाचार्य के पास पढ़ा करता था उसने हरिदास के हरि कीर्तन से मुग्ध होकर लिखना पढना छोड़ दिया। यह दशा देख तहसीलदार ने आचार्य से कहा कि हरिदास के लिये अन्यत्र कोई कुटी बनवाओ। हरिदास को जब यह ज्ञात हुआ, तब शान्तिपुर में जाकर गंगा के तट पर रहने लगे। वहां हरिदास उच्चैः स्वर से उत्साह और अनुराग के साथ प्रफुल्लमन से हरि नाम कीर्तन करने लगे। नित्य एक लक्ष हरि नाम का जप किये बिना हरिदास जल ग्रहण नहीं करते थे। उनकी भक्ति और विशुद्ध चरित्र देख कर लोग उनमें श्रद्धा भक्ति करने लगे। एक दिन अनेक मनुष्यों ने मिलकर हरिदास की तपस्या में विघ्न डालने के लिये रात के समय एक दुश्चरित्रा स्त्री को उनकी कुटी में भेजा। वह वेश्या

कुटी में गई।

हरिदास ने कहा जब तक मैं जप न करलूं तब तक ठहरो। किन्तु सारी रात बीत गई पर हरिदास का जप पूरा न हुआ। अगले दिन वह वेश्या सन्ध्या होते ही हरिदास की कुटी में फिर पहुंची और व्यङ्ग करती हुई उन के पास बैठ कर उनका अनुकरण करती हुई हरि नाम जपने लगी। वह पांसुला कई घण्टे वहां बठ कर हरिदास पर रुष्ट होकर वहां से चली आई। धन के लोभ में पड़ कर वह वार बनिता तीसरे दिन फिर हरिदास की कुटी में गई और पिछले दिन की तरह जप करने लगी। ऐसे ही बहाना करते २ कुछ क्षण के बाद वह वाराङ्गना हरि नाम के प्रेम में उन्मत्त हो कर तथा पूर्व कृत पापों की ग्लानि से दग्ध होकर हरिदास की शिष्या होगई।

लूटन को हरि नाम धन, आई पातुरी पास।
नाम सुनत सो लुट गई छुटी यम की त्रास॥

इस घटना के बाद हरिदास नव द्वीप गये और वैष्णव मंडली में सम्मिलित हुए। वैष्णव साधु हरिदास की भक्ति और प्रेम को देख मोहित हुए। उस समय प्रभु चैतन्य देव निलाचल पर थे। अतः हरिदास भी वहां गये और वैष्णव साधुओं की मण्डली में आनन्द पूर्वक शेष जीवन व्यातीत करने लगे। हरिदास के अन्तिम काल को देख चैतन्य देव शिष्यों सहित उनके आश्रम में गये और उन सबने मिल कर हरिकीर्तन किया। हरि नाम कीर्तन करते २ ही हरिदास ने देह त्यागी। चैतन्य प्रभु ने हरि नाम कीर्तन करते हुए हरिदास के मृतक शरीर को समुद्र के तट पर बालुका में समाधिस्थ करदिया।

आत्मोद्धार के लिये चेतावनी

[ले० पूज्य श्री जयदयाल जी गोयन्दका]

यद्यपि आत्मोद्धार के सम्बन्धमें मुझ सरीखे मनुष्य का कुछ लिखना अनधिकार चर्चा है परन्तु सम्पादक जी के प्रेम एवं आग्रह के कारण बाध्य हो कर मैं कुछ पंक्तियां लिख रहा हूं, सज्जन गण इसे बालचेष्टावत् समझ कर क्षमा करें।

मनुष्य मात्र सुख चाहते हैं, सुख आत्मोन्नति में है, इसलिये प्रत्येक मनुष्य आत्मा की उन्नति चाहता है, कोई भी आत्मा का पतन नहीं चाहता परन्तु विषयासक्ति की प्रबलता से प्रमाद वश वह ऐसे कार्य कर बैठता है जो आत्म-पतन में प्रधान कारण होते हैं। विषयों के संग से समझदार पुरुष की इन्द्रियां भी बलात्कार से भोगों की ओर खिंच जाती हैं। भगवान् ने कहा है-

यततो ह्यपि कौंतेय पुरुषस्य विपश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरंति प्रसभं मनः ॥

हे अर्जुन ! जिस से यत्न करते हुए बुद्धिमान पुरुष के मन को भी यह प्रमथन स्वभाव वाली इन्द्रियां बलात्कार से हर लेती हैं। अतएव मनुष्य को चाहिये कि मन इन्द्रियों का संयम करके भोगों से बचकर तत्परता से आत्मोन्नति के कार्य में शीघ्रातिशीघ्र प्रवृत्त हो जाय। भगवान् कहते हैं:-

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनोबन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥

"अपने द्वारा ही अपना (संसार समुद्र से) उद्धार करे, अपने आत्मा को अधोगति में न पहुंचावे क्योंकि यह जीवात्मा आप ही अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है"। जो अजितेन्द्रिय मनुष्य संसार के ऐश आराम और प्रमाद में अपना समय बिताता है वह आत्मा को नीचे गिराता है, इस लिये भगवान् ने इस की निन्दा की है! बुद्धिमान पुरुष विषयों को दुःखरूप तथा अनित्य मान कर उन में आसक्ति नहीं करते। भगवान् ने स्पष्ट कहा है :-

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौंतेय न तेषु रमते बुधः ॥

जो यह इन्द्रिय तथा विषयों के संयोग से उत्पन्न होने वाले सब भोग हैं वे (यद्यपि विषयी पुरुषों को सुखरूप भासते हैं तो भी) निस्सन्देह दुःख के ही हेतु और आदि अन्त वाले हैं अर्थात् अनित्य हैं। इसलिये हे अर्जुन ! बुद्धिमान विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता। जो जितेन्द्रिय पुरुष निद्रा, आलस्य, प्रमाद और विषयासक्ति को त्याग कर परमेश्वर की इच्छानुसार उत्तम आचरण करता है वही अपने आप आत्मा का उपकार करता है। आत्मोद्धार की इच्छा वाले पुरुष के लिये सब से आवश्यक है परमात्मा की शरण होना। परमात्मा की शरण होने में विषय बाधक हैं। जो मनुष्य विषयों की शरण से सुख या आत्मोद्धार चाहता है वह बड़ी भूल करता है, वह आत्मा का हनन करता है। गोसांई जी महाराज कहते हैं।

यहि तनु कर फल विषय न भाई,
स्वर्ग स्वल्प अन्तहु दुःखदाई ।
नर तनु पाय विषय मन देहीं,
पलटि सुधा ते शठ विष लेहीं ॥
ताहि कबहुं भल कहै न कोई,
गुंजा गहै पारसमणि खोई ।
जो न तरै भव सागरहिं,
नर समाज अस पाइ ।
सो कृत निन्दक मन्दमति,
आत्म हान गति जाइ ॥

अतएव मोहरूपी अज्ञान निद्रासे शीघ्र जाग्रत होना चाहिए। आत्मोन्नति का मार्ग बड़ा कठिन है परन्तु महापुरुषों के संग से उन के बतलाये हुए साधन के अनुसार कार्य करने से वही सुगम होसक्ता है। भगवान् यमराज नचिकेता से कहते हैं।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया,
दुर्गम्पथस्तत् कवयो वदन्ति ॥

पण्डित जन इस पथको तीक्ष्ण क्षुरी की धार के समान दुर्गम बताते हैं। अतएव उठो! जाग्रत होओ! और महान् पुरुषों के पास जाकर अपना कर्तव्य समझो !!!

साधु तुकाराम

[ले० प्रभुदत्त ब्रह्मचारी]

महाराष्ट्र प्रदेश के अन्तर्गत पूना नगर के पास एक देहु नामक ग्राम है। साधु तुकाराम का जन्म इसी ग्राम में हुवा था। यह मोरे उपाधि धारी शूद्र थे तथा वाणिज्य द्वारा अपना निर्वाह किया करते। इनके दो सहधर्मिणी थीं एक का नाम रुक्मी बाई तथा दूसरी का नाम जीजा बाई था। सांसारिक वैभवों से ये पूर्ण थे, किन्तु लक्ष्मी चंचल हैं अतः ये सुख सामग्री चिर स्थायी नहीं रह सकी। तुकाराम के जिस संसार रूपी समुद्र में इतने दिनों तक सौभाग्य रूपी ज्वार आ रही थी, उसी में अब भाटा का आरम्भ हुवा। शैशवावस्था से ही तुकाराम ईश्वर भक्त थे और साधु सन्तों की सेवा किया करते थे। माता पिता के अवसान से इनका मन विरक्त होगया तथा भगवद्भक्ति की ओर आकर्षित हुवा। ये कुल गुरु विट्ठल नाथ के मंदिर में जाकर भगवान् की सेवा में तत्पर रहने लगे। मन्दिर में रह कर ईश्वराराधन करते करते इनके मन में भक्ति रस पूर्ण पुस्तकें पढने की लालसा हुई। उन्होंने व्यापार के अर्थ जो विद्याभ्यास किया था यह उन पुस्तकों के गूढार्थ को समझने के लिये पर्याप्त न हुवा। अतः पुनः विद्याभ्यास करके भक्ति रसात्मक पुस्तकें पढ़ने लगे। उन पुस्तकों के अध्ययन से इनका चित्त गृह कार्य से विरक्त होकर भगवान् के चरणों में आकर्षित होने लगा। उनको विरक्त देख चाकरों ने उनकी धन सम्पत्ति शनैः शनैः स्वहस्तगत करली। तुकाराम के व्यवसाय की अवनति देख अन्य व्यवसाइयों ने उनसे लेन देन बन्द कर दिया। अब तो वे ऋण जाल में फंसने लगे। निर्धनता ने यहां तक घेर लिया कि अन्न का भी कष्ट भोगना पड़ा। अब तो इनकी पूर्व सहधर्मिणी रुक्मी बाई भी चल बसी। तुकाराम ने अपनी स्त्री के आभूषणों का विक्रय करके एक छोटी सी दूकान खोललो, ग्राहक लोग अल्प मूल्य में ही इनकी दूकान का माल ले जाते। इनको इस पर किञ्चित् भी चिन्ता नहीं होती। कुछ दिनों में इनकी वह पूंजी चुक गयी। ये तो परम दयालु तथा सन्तोषी जीव थे, इनके लिये व्यवसाय करना तो कठिन काम था। भगवान् के भक्त तो सर्वत्र भगवान् कोही देखते हैं। अतः इन से ग्राहक जो मांगते वही विना विचारे देदेते। और भगवान् का नाम स्मरण किया करते। तुकाराम की स्त्री जीजा बाई इस दशाको देख तुकाराम से बोली कि आप गुण्डों को माल लुटा कर दारिद्र्य को क्यों निमन्त्रण दे रहे हो, ऋणि होने के कारण मुझे तो मुख दिखाने में भी लाज आती है। खैर हुवा सो हुवा अब मैं आपको ऋण लेकर देती हूं आप इस से व्यवसाय कीजिये। परन्तु इस बार भी दया वश हो कर इस धन को भी मत लुटा देना। स्त्री के उप-

देश के वाक्यों को सुन कर तुकाराम धन लेकर इस पूंजी से कुछ व्यवसाय किया और इस वार इन्हें कुछ लाभ हुवा। मार्ग में एक ऋणि ब्राह्मण मिला उस पर उन्हें दया आई, वह सवधन इन्होंने उस ब्राह्मण को देदिया। तुकाराम खाली हाथ घर को गये उन की स्त्री जीजा बाई ने जब यह हाल सुना तो आग बबूला होगयी। और अपने पति तुकाराम का बड़ा अनादर किया। स्त्री की भर्त्सना सुन तुकाराम ने कोमल चित्त बालकों की तरह उस बात को वैसे ही उड़ा दिया और स्त्री से कुछ कहे सुने विना ही इन्द्रायणी नदीके तटपर आलिन्द नामक ग्रामको चले गये उसी स्थान पर ६०० वर्ष पूर्व ज्ञान देव नामक साधु रहा करते थे। ये उनकी समाधिके पास विचर रहे थे, कि एक किसान अपनी खेती की रक्षार्थ किसी मनुष्य की खोज में था। वह तुकाराम को लेगया। तुकाराम मञ्च पर बैठ कर विट्ठल भगवान् का नाम कीर्तन करने लगे खेत में पक्षी पशु खूब खाने लगे। किसान आया और बड़ा क्रोधित हुवा किन्तु इस वर्ष किसान के बहुत अनाज हुवा। एक दिन तुकाराम गन्नेका गट्ठर सिरपर रखे आरहे थे। बालकों ने एक गन्ना मांगा उन्हों ने सब गन्ने बांट दिये एक गन्ना अवशिष्ट रहा सो घर लेगये स्त्री ने गन्ना लेकर उन की कमर में मारा तो दो भाग हो गये तुकाराम स्त्री की मार खाकर बड़े प्रसन्न हुये और बोले कि यही वास्तविक धर्म है। मैंने तुम्हें एक गन्ना दिया था उसका तुमने दो भाग कर के एक मुझे भी दिया। इसी प्रकार स्त्री की मार खाकर तुकाराम दुःखित नहीं होते थे और सब अत्याचारों को सह लेतेथे। कुछ दिनों में इन के पुत्र शम्भू का भी देहान्त होगया जो कि तुकाराम को परम प्रिय था। पुत्रकी मृत्यु से इन के हृदय में तीव्र वेदना हुई तथा ज्ञान का सञ्चार हुवा। और इन्हों ने सोचा कि संसार में सुख नहीं है कोयले को जितना घिसा जाय उतनी ही अधिक कालिमा निकलती है। इसी प्रकार संसार में जो जितना डूबता है वह उतना ही दुःखी होता है। धनदारा आदि सारे पदार्थ सार शून्य हैं। तब हम क्यों असार में पड़े रहें। यह सोच विरक्त हो घर से बाहर एक पर्वत पर चले गये। वहां अपने इष्ट देव विट्ठल भगवान् का आराधन करने लगे। उन का मन धर्म में स्थित न हुवा। एक दिन उनको स्वप्न हुवा। स्वप्न में एक ब्राह्मण ने उन के मस्तक पर हस्त रख कर आशीर्वाद दिया। तथा राम कृष्ण हरि इस मूल मन्त्र का उपदेश किया। फिर वह ब्राह्मण किधर गया यह तुकाराम स्थिर न कर सके। स्वप्न में दीक्षा पाकर तुकाराम पाण्डु रङ्ग देवकी शरण में गये। तुकाराम अविचलित अध्यवसाय के प्रभाव से कुछ दिनों में ही सुपण्डितों की श्रेणी में गिने जाने लगे। महाराष्ट्रीय साधुओं में नामदेव नामक साधु होगये हैं उन के रचे हुये सुललित प्रभंग पद्यों गाने लगे, उन के गान से यह स्वयं भी अभंग रचने लगे। पद्य रचना करते २ इनमें इतनी क्षमता बढ़ गई कि इन के मुख से अनर्गल पदावलि निकलने लगी। जिस समय ये हरि कीर्तन करते उस समय श्रोता स्पन्दहीन जड़ पदार्थकी भांति अचेत हो जाते थे। वे शूद्रके घर जन्मे थे तथापि लोग इनका ब्राह्मणों के सदृश सम्मान करते थे। तुकाराम के यश सौरभ चारों ओर व्याप्त देख कर सम्भाजी रामेश्वर भट्ट आदि परोत्कर्ष असहिष्णु लोगअनेक प्रकार से उनको यंत्रणा देने लगे। किन्तु अंतमें तुकाराम की दया दाक्षिण्य विनम्रतादि गुणोंसे आश्चर्यान्वित हो नत मुख होकर अन्य जनोंकी भांति

भक्ति भाव से देखने लगे एक बार तुकाराम हरि कीर्त्तन कर रहे थे कि एक स्त्री अपने मृत पुत्र को ले कर आई और बोली यदि आप विष्णु भक्त होंगे तो मेरे पुत्र को सजीव करदेंगे, उस स्त्री के विश्वास को देख कर तुकाराम ने हरि की स्तुति की और मृत पुत्र सजीव होगया। उनकी भक्ति देख लोग चकित होगये।

भजन

अद्भुत कौशल देख सखीरी,
श्री वृन्दावन होर परी री ॥ टेक ॥
उत घन उदित सहित सौदामिनी,
इतहिं मुदित राधिका हरा री।
उत बग पांति सोभित इत सुन्दर,
धाम विलास सुदेश खरी री ॥
वहां घन गर्ज इहां धुन मुरली,
जलधर इत उत अमृत भरी री।
उतहिं इन्द्र धनु इत बनमाला,
अति विचित्र हरि कंठ धरी री ॥
सूर साथ प्रभु कुंवरि राधिका,
गगन की शोभा दूर करी री।

२

नाथ अनाथन की सुध लीजै ॥
गोपी ग्वाल गाइं गो सुत सब,
दीन मलीन दिनहिं दिन छीजै।
नैन सजल धारा बाढी अति,
बूडत ब्रज किन कर गहि लीजै ॥
इतनी विनती सुनहु हमारी,
बार कहूं पतियां लिख दीजै।
चरण कमल दरशन नव नौका,
करुना सिन्धु जगत जस लीजै।
सूरदास प्रभु आस मिलन की,
एक बार आवन ब्रज कीजै ॥

३

हमहिं डर कौन को री मइया ॥ टेक ॥
डोलत फिरत सकल वृन्दावन जाके मीत कन्हैया ॥ १
जबर२ भीड़ परै है हमको तहां२ करि लेत सहैया ॥२
चिर जीवहु यशुमति सुत तेरो हलधर दोउ भैया ॥३॥
उनते बड़े और नहीं कोऊ इहि सब देत बढैया ॥४॥
सूरश्याम सन्मुख जे आये ते सब स्वर्ग चलैया ॥५॥

४

सोई सुख नन्द भाग्य तें पायो ॥ टेक ॥
जो सुख ब्रह्मादिक को नाहीं,
सोई सुख यसुमति गोद खिलायो।
सोई सुख सुरभी बच्छ वृन्दावन,
सोई सुख ग्वालन टेरि सुनायो ॥
सोई सुख यमुना कूल कदम चढि,
कोप कियो काली गहि ल्यायो।
सुख ही सुख डोलत कुञ्जन में,
सब सुख निधि बनतें ब्रज आयो।
सूरदास प्रभु सुख सागर अति,
सोई सुख सेष सहस मुख गायो ॥

५

राधे हरि रिपु क्यों न दुरावति ॥ टेक ॥
सारंग सुत बाहन की शोभा,
सारंग सुत न बनावति।
सैल सुता पति ताके सुत पति,
ताके सुतहिं मनावति ॥
हरि बाहन के मीत तासु पति,
ता पति तोहिं बुलावति।
राका पति नहीं कियो उदय सुनि,
या समये नहिं आवति ॥
विविध विलास आनन्द रसिक सुख,
सूरश्याम केरे गुन गावति ॥

६

राधे या में कहा तिहारो ॥ टेक ॥
मुकहि मकर तनु हाटक बेनी,
सो पन्नग अंग कारो ।
गतिमराल केहरि कटि कदली,
जुगल जंघ अनुहारो ॥
नैन कुरंग बचन कोकिल के,
नासा सुक कहँ गारो ।
विद्रुम अधर दसन दाड़िम कन,
करो न तुम निरवारो ॥
सूरदास प्रभु त्रिभुवन पति को,
एक न उनहि उबारो ।

७

मोहन सौं मुख बनत न मोरे ॥ टेक ॥
जिन नैनिन मुखचन्द्र विलोक्यो,
जात तरनि नहीं जोरे ।
मुनि मन मन्डन योग कर्म क्रतु,
मन्दिरभार सहत कहि कोरे ॥
बनत नहीं द्वै कमल के बन्धन,
कुंजर क्यों न रहत बिनु तोरे ।
नीलाम्बुज तनु नील बसन मति,
चितयो न जात धूम के भोरे ॥
सूरदास जे कमल के विरही,
चंपक बन लागत चित थोरे ।

८

रोम रोम ह्वै नैन गयेरी टे॥क ॥
ज्यों जलधर पर्वत पर बरषत,
बून्द २ ह्वै भरनि दयेरी ॥ १ ॥
ज्यों मधुकर रस कमल पानकर,
माते तज उन्मत्त भयेरी ॥ २ ॥
ज्यों कांचुरी भुअंग तजहि
फिरि न तकै ज्यों हांसमु गयेरी ॥ ३ ॥
ऐसी दशा भईरी इनकी ।
श्याम रूप में मगन रयेरी ॥ ४ ॥

सूरदास प्रभु अगनित शोभा,
ना जानों केहि अंग छयेरी ॥ ५ ॥

९

विधुवदनि अरु कमल निहारै ॥ टेक ॥
सुमनासुत लै कमलन मंजित,
धनपति धाम को नांव संवारै ॥ १ ॥
तरणि तात बनिता सुत ता छवि,
कमलनि रचि रचि ग्रन्थिसंवारै ॥ २ ॥
कमल २ पर रेख बनावति,
सारंग रिपु पाहन गति ढारै ॥ ३ ॥
उर हारावलि मेलति कमलन,
मनहु इन्दु पारस ढिंग पारै ॥ ४ ॥
सूरश्याम के नामहि जीवन,
कमलापति के पदहि विचारै ॥ ५ ॥

१०

देखेहु अन देखे से लागत ॥ टेक ॥
यद्यपि करत रंग भरे एकहि ।
इक टक रहे निमिष नहीं त्यागत ॥ १ ॥
इन रुचि दृष्टि मनोज महा सुख ।
उत शोभा गुन अमित अनागत ॥ २ ॥
बाढ्यो वैर करन अर्जुन ज्यों ।
दुई महं एक भूलि नहीं भागत ॥ ३ ॥
उत सनमुख सों सावधान सजि ।
इत सनाह अंग २ अनुरागत ॥ ४ ॥
ऐसे सूर सुभट ए लोचन ।
अधिक उ अधिक श्याम सुख मांगत ॥५॥

११

तुमको कमल नयन कवि गावत ॥ टेक ॥
बदन कमल उपमा यह सांची, ता गुनको प्रगटावत ।
सुन्दर कर कमलन की शोभा, चरण कमल कहवावत
और अंग कहि कहा बखानौं, इतने ही को गुनगावत
श्याम नाम अद्भुत यह बानी, श्रवण सुनतसुख पावत
सूरदास प्रभु ग्वाल संगाती, जानी जात जनावत ॥

१२

नटवर भेष धरे व्रज आवत ॥ टेक ॥
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल ।
कुटिल अलक मुख पर छवि पावत ॥ १ ॥
भ्रकुटि विकट नैन अति चंचल ।
यह छवि पर उपमा इक धावत ॥ २ ॥
धनुष देखि खंजनविवि डरपत ।
उड़ि न सकत उठिये अकुलावत ॥ ३ ॥
अधर अनूप मुरलि सुर पूरत ।
गौरी राग अलापि बजावत ॥ ४ ॥
सुरभि वृन्द गोप बालक संग ।
गावत अति आनन्द बढावत ॥ ५ ॥
कनक मेखला कटी पीताम्बर ।
नृत्यत मन्द २ सुर गावत ॥ ६ ॥
सूर श्याम प्रति अंगमाधुरी ।
निरखत व्रज जन के मन भावत ॥ ७ ॥

१३

राधे हरि रिपु क्यों न छिपावति ॥ टेक ॥
मेरु सुतापति ताके पति सुत,
ताको क्यों न मनावति ॥ १ ॥
हरि वाहन ता वाहन उपमा,
सो तैं धरे दृढ़ावति ॥ २ ॥
नव अरु सात बीस तोहि सोभित,
काहे गहरु लगावति ॥ ३ ॥
सारंग बचन कह्यो करि हरि को,
सारंग बचन न भावति ॥ ४ ॥
सूरदास प्रभु दरश बिना तुव,
लोचन नीर बहावति ॥ ५ ॥

१४

ऊधो कोकिल कूजत कानन ॥ टेक ॥
तुम हमको उपदेश करत हो, भस्म लगावत आनन ।
औरौं सींगी सखि संग ले, टेरत चढ़े पषानन ॥
बहुरो आय पपीहा के मिसि, मदनदहत निज बानन
हम तौ निकट अहीरि बावरी, योग दीजिये जानन ॥
कहा कथत मौसी के आगे, जानत नानी नानन ।
तुम तो हमहिं सिखावन आये, मुक्ति होय निर्वानन ॥
सूर मुक्ति कैसे पूजति है, वा मुरली के तानन ॥

१५

तेरी बन जायगी रामगुण गाए ते ॥ टेक ॥
ध्रुव की बनी, प्रह्लाद की बन गई ।
गणका की बन गई सुवा के पढ़ाये ते ॥ १ ॥
शिवरी की बन गई, मीरां की बन गई ।
कुब्जा की बन गई चन्दन चढ़ाये ते ॥ २ ॥
बाली की बन गई सुग्रीव की बन गई ।
हनुमान की बन गई सिया सुधि लाये ते ॥ ३ ॥
सूर की बन गई, कबीर की बन गई ।
तुलसा की बन गई, हरि यश गाये ते ॥ ४ ॥

१६

राम रटना मन भ्रम में न पड़ना ॥ टेक ॥
यह संसार धार तेगा की,
सम्भल २ के पग धरना ॥ १ ॥
माया देख भयो अभिमानी,
चार दिना का है सुपना ॥ २ ॥
देखत के नाते दुनियां के,
अन्त समय कोई नहीं अपना ॥ ३ ॥
दास गुपाल राम सुमरन से,
करलो जन्म सफल अपना ॥ ४ ॥

१७

लगन नहीं छूटे री एरी मेरी बीर ॥ टेक ॥
ताने देहु भले नाम धरो, चाहे कोटि करो तदबीर ।१
छिन में करत चतुर को बौरा, नृप को करत फकीर २
नारायण अब कठिन है बचबो, बिन्धे हिये दृग तीर ३

१८

अब मोहि भीजत क्यों न उबारो ॥ टेक ॥
दीनबन्धु करुणानिधि स्वामी,
जन के दुःख निवारो ॥ १ ॥
ममता घटा मोह की बूंदें,

सरिता में नहीं पारो।
डूबत कबहूं थाह नहीं पावत,
गुरु जन ओट अधारो॥
गरजत क्रोध लोभ के नारो,
सूझत कहुं न उधारो।
तृष्णा तड़ित चमक छिन ही छिन,
यह निशि यह तन जारो॥
यह भव जल कलिमल ही गहै है,
बोरत सहस पुकारो॥
सूरदास पतितन के संगी,
बिरद ही नाथ संभारो॥

१६

जोगी आजा आजा जोगी,
पाहिं परूं मैं हौं चेरी तेरी॥ टेक॥
प्रेम भगती को पैंडो न्यारो।
हमकूं गैल बताजा॥ १॥
अगर चन्दन की चिता बनाऊं,
अपने हाथ जलाजा॥
जब जल भई भस्म की ढेरी,
अपने अंग लगाजा॥
मीरां कहै प्रभु गिरधर नागर,
ज्योति में ज्योति मिला जा॥

२१

भाई रे इन नैनन हरि पेखो॥ टेक॥
हरि की भगत साधु की संगति,
सोई यह दिल लेखो॥ १॥
चरण सोई जो नचत प्रेम से,
कर सोई जो हरि पूजे।
शीश सोई जो नवै साधु को,
रसना रटत न दूजे॥
यह संसार हाट को लेखो,
सब कोई बनजहो आयो।
जिमि जस लाद्यो तिन तस पायो,
मूरख मूल गंवायो॥
आतम राम देह धरि आयो,
तामें हरि को देखो।
नामदेव कहत बलि बलि जै हौं,
हरि भज और न लेखो॥

२२

क्यों बिसरे मेरे पीव पियारा,
जीव को जीवन प्राण हमारा॥ टेक॥
क्योंकर जीवै मीन जल बिछुरे, तुम बिन प्राण सनेही
चिन्ता मणी जब करते छूटे, तब दुःख पावे देही॥
माता बालक दूध न देवे सो कैसे करि पीवे।
निरधन का धन अनत भुलाना सो कैसे कर जीवै॥
बरषहु राम सदा सुख अमृत, निरझर निर्मल धारा।
प्रेम पियाला भर भर दीजै दादूदास तिहारा॥

२३

समझ बूझ रण चढना साधो,
खूब लड़ाई लड़ना है।
दम दम कदम परै आगे को,
पीछै नाहीं पछड़ना है॥
तिल तिल घाव लगे जो तन में,
खेत सेती नहीं टरना है॥
शब्द खैंच शमशेर जेर कर,
उन पांचों को धरना है॥
काम क्रोध मद लोभ कैद कर,
मन कर ठौरे मरना है।
खड़ा रहै मैदान के ऊपर,
उनकी चोट न संभरना है॥
आठ पहर असवार सुरति पर,
गाफिल नाहीं परना है॥
शीश दिया साहिब के ऊपर,
किसका डर अब डरना है॥

२४

गुरु पैयां लागौं नाम तो लखाय दीजोरे॥ टेक॥
जन्म जन्म का सोया मनुवां,
शब्दन मार जगाय दीजोरे।

घट अंधियार नैन नहीं सूझै,
ज्ञान का दीप जगाय दीजोरे ॥
त्रिप की लहर उठत घट भीतर,
अमृत बूंद चुवाय दीजोरे ।
गहरी नदिया अगम बहे धारा,
खेय के पार लगाय दीजोरे ॥
धरमदास की अर्ज गुसांई,
अब के खेप निभाय दीजोरे ॥

क्षमा प्रार्थना ।

१. "भगवद्भक्तांक" को समय पर निकालने का भरसक प्रयत्न करने पर भी यह अंक आपकी सेवा में कुछ लेट आरहा है, इसका कारण कुछेक रंगीन तथा सादे चित्रों का समय पर न मिलना है। हमें खेद है कि बहुत सा रुपया व्यय करने पर भी हम इस अंक को पाठकों की सेवा में समय पर नहीं भेज सके। कृपालु ग्राहक क्षमा करें।

२. जिन लेखक महानुभवों ने अपना अमूल्य समय व्यय करके कृपा पूर्वक इस अंकके लिये लेखादि प्रदान करने का कष्ट उठाया है, हम उनको हार्दिक धन्यवाद देते हैं, तथा जिन सज्जनों के लेख स्थानाभाव से अथवा कार्यालय में देरी में पहुंचने के कारण से इस अंक में नहीं छप सके उन से भी हम क्षमा याचना करते हैं। आशा है वे अपनी स्वाभाविक उदारता से क्षमा करेंगे।

३. खेद है कि समाचार पत्रों में "निर्धन विद्यार्थियों को ॥) में भक्ति" नामक प्रकाशित सूचना के अनुसार बहुत से पुस्तकालयों से हमारे पास चिट्ठियां आई हैं जिनका प्रथक् प्रथक् उत्तर देने में हम असमर्थ हैं। उनको ज्ञान होना चाहिये कि यह रियायत केवल निर्धन विद्यार्थियों के ही लिये है अन्य के लिये नहीं।

(सम्पादक)

भक्ति के संरक्षक

१. राय बहादुर ला० सेवकराम जी एम. एल. सी, बार-ऐट-लौ लाहौर	१२५)
२. भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी	१११)
३. राय बहादुर ला० बनारसीदास जी रईस, मिल ओनर अम्बाला	१०१)
४. श्रीमान् भाई नारायण सिंह जी हीरामण्डी लाहौर	१०१)
५. राव बहादुर, कप्तान राव बलवीर सिंह जी ओ. बी. ई. रामपुरा	५१)
६. सेठ अर्जुनदास जी भटिण्डा	५१)
७. राव श्रीराम जी रईस नांगल	२५)
८. म० शोभाराम जी डूंगरवास	२५)
९. चौ० धर्मसिंह जी मलिक, तहसीलदार रेवाड़ी	२५)
१०. राव निहालसिंह जी सूबेदार पाल्हावास	२५)
११. बा० स्वयम्बरदास जी बी० ए० इन्सपेक्टर आफ स्कूलज पटना	२५)
१२. श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलवीरसिंह जी	२५)
१३. सेठ बनवारी लाल जी लोहिया चावड़ी बाजार दिल्ली	२५)
१४. चौ० नेतराम साहब गिरदावर हलका जाटूसाना जिला गुड़गांवा	२५)
१५. बक्शी चाननशाह एम. ए. एल. एल. बी. इन्कम्टैक्स आफीसर जालंधर	२५)

१६. पं० मूलचन्द जी शर्मा (डहीना निवासी) अकाउण्टैन्ट हेड आफिस जयपुर २५)
१७. ला० नूनकरणदास जी अग्रवाल भिवानी। २५)
१८. राजा रूपसिंह जी रईस जिहाजगढ। २५)
१९. पं० गोपीनाथ जी [बिहाली निवासी] मालिक फार्म काशीनाथ बच्चूमल गली परांवठा दिल्ली २५)
२०. श्रीमती खुशालदेवी धर्मपत्नी चौ० नवलसिंह जी कोसली। २५)
२१. सेठ शिम्भुदयाल जी बीकानेर २५)
२२. चौ० रामजीलाल जी ढाणा, हांसी २५)
२३. चौ० चन्दनसिंह जी कमान दतिया राज्य २५)

सहायक

१. चौ० हुकमसिंह जी निखरी ११)
२. बा० वैकुण्ठनाथ जी दिल्ली ११)
३. चौ० शिवप्रसाद सेक्रेटरी अहीर स्कूल रेवाड़ी ५)
४. रामप्रसाद जी भाड़सा ५)
५. चौ० रामजीलाल जी कन्स्टेबल नांगलोई ५)
६. भक्त बनारसीदास जी दिल्ली ५)
७. महाशय शादीराम जी मस्तापुर, रेवाड़ी। ५)
८. बा० ब्रजलाल जी शिरस्तेदार प्राईवेट सेक्रेटरी आफिस संगरूर, जींद। ५)
९. श्रीमती सूरज देवी धर्मपत्नी चौ० जोरावरसिंह जी एडीशनल जज अलीगढ। ५)
१०. चौ० शिवनारायणसिंह जी कोतवाल, सीकर राजपूताना ५)
११. श्रीमान् पं० जयराम जी शर्मा 'सनातन' इलाहबाद बैंक देहली। ५)
१२. ला० बनारसी दास जी, अकाउण्टेण्ट हजूरी, संगरूर। ५)
१३. ला० भगवान दास जी, औडट क्लर्क सेक्रेटरी इजलास खास आफिस संगरूर ५)
१४. महन्त प्रकाशानन्द जी मन्दिर चरणदासियान बल्लीमारान दिल्ली ५)
१५. मि० एल. के. मिसरा इंस्पेक्टर, पोस्ट आफिस जयपुर ५)

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१. भगवत्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहित	मूल्य ॥=)
२. सारसंग्रह	मूल्य ≡)
३. शब्द संग्रह	मूल्य -)॥
४. भगवत् गीता दशम अध्याय पर्यन्त	मूल्य ।-)
५. अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	मूल्य -)।
६. वेदोपनिषत्	मूल्य ।-)
७. ज्ञानधर्मोपदेश	मूल्य -)॥।
८. भाषा फक्किका प्रकाश	मूल्य ॥)
९. भक्ति योग संग्रह	,, -)॥
११. शब्द संग्रह गुटका	,, ।)
२१. शब्द सदाचार संग्रह	,, -)।

मिलने का पताः-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" आश्रम रामपुरा रेवाड़ी।